श्री रामकृष्ण-विवेकानंद भाव-धारा की एकमात्र हिंदी मासिकी

वर्ष : ६ अंक : ६ सितम्बर : १९८७

विवेक शिखा

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

११. श्री पी० राम—पटना (बिहार)
१२. श्री अशोक कुमार टाँटिया—कलकत्ता (प० बंगाल)
१३. श्री धर्म पाल—नई दिल्ली (नई दिल्ली)
१४. श्री रमेश चन्द्र कपूर—इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)
१५. श्री पलक बसु—इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)
१६. प्राचार्य, संतगजानन महाराज कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग—शेगाँव (महाराष्ट्र)
१७. श्री प्रभाकर सिंह—इलाहाबाद
१८. श्रीमती मंजु रस्तोगी—दुमका (बिहार)
१९. श्री कमल कुमार गुहा—कलकत्ता (पश्चिम बंगाल)
२०. श्री विवेक भुजंग राव कुलकर्णी—नागपुर (महाराष्ट्र)
२१. श्रीराम विलास चौधरी—सुपौल, दरभंगा (बिहार)
२२. डा० रमेश चन्द्र प्रसाद—देवघर (बिहार)
२३. श्री मातादीन मिश्र—सारण (बिहार)
२४. एम० एम० नावालगी—कादरा (कर्नाटक)
२५. श्री हेमराज साहू—नरसिंहपुर (म० प्र०)
२६. डा० प्रकाश चन्द्र मिश्र—पटना (बिहार)
२७. श्री विनोद व्रजभूषण अग्रवाल—नागपुर (महाराष्ट्र)
२८. श्री केशरदेव भालोटिया—जरमुण्डी (बिहार)
२९. श्री धर्मवीर शर्मा—खण्डवाया (उत्तर प्रदेश)
३०. श्री शिवशंकर सुखदेव पाटील—शेगाँव (महाराष्ट्र)
३१. श्री गजानन महाराज संस्थान—शेगाँव (महाराष्ट्र)
३२. श्री दयाशंकर तिवारी—लाल बाजार, सीवान (बिहार)
३३. श्री राजकुमार गडोडिया—अपर बाजार (राँची)
३४. कुमारी चुक चुक—बेलगाँव (महाराष्ट्र)
३५. डॉ० श्रीमती वीणा कर्ण—पटना (बिहार)
३६. डॉ० सम्पत पाटील—भदोल (महाराष्ट्र)
३७. श्री रमाशंकर राय—वाराणसी
३८. श्री आर० के० यादव—फैजाबाद
३९. कुमारी अल्पना सकलेचा—बम्बई
४०. श्री हिम्मत लाल रणछोड़दास शाह—बम्बई
४१. श्री नीरज गुप्ता—रायपुर (मध्य प्रदेश)
४२. डॉ० गीता देवी—४४, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४३. डॉ० शैल पाण्डेय—४१, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४४. श्री रामानन्द गुप्ता—बिसवा (उत्तर प्रदेश)
४५. श्री निशीथ कुमार बोस—तपन प्रिंटिंग प्रेस, पटना
४६. श्री नरेश कुमार कश्यप—नागपुर (महाराष्ट्र)
४७. श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द समिति—अमरावती, महाराष्ट्र
४८. डॉ० दर्शन लाल—कुराली (पंजाब)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. दुर्गा-स्तुति		२
३. आनन्दमयी का आगमन	(सम्पादकीय सम्बोधन)	३
४. शक्ति का स्रोत : दुर्गा	स्वामी आत्मस्थानन्द	६
५. शक्ति-उपासना का तात्पर्य	स्वामी हर्षानन्द	९
६. हमारा भविष्य ज्योतिर्मय है	स्वामी रंगनाथानन्द	१०
७. शरणागति या ईश्वर-प्रणिधान	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	१८
८. 'बोलबम' की यात्रा	मुसाफिर	२३
९. स्वामी विवेकानन्द के संस्मरण	स्वामी सदाशिवानन्द	२८
१०. स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन कथा	चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय	२९

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—६ सितम्बर—१९८७ अंक—९

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	२५० रु०
वार्षिक	२० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	३५ रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजनेकी कृपा करें :

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

यदि मूर्तियों के बारे में चिन्मय-बोध रखकर पूजा की जाए, तो उनकी पूजा करते हुए पूजक को ईश्वरदर्शन तक हो जाता है, परन्तु जो मिट्टी या पत्थर समझकर मूर्ति की पूजा करता है उसकी पूजा का कोई फल नहीं होता।

(२)

जिस प्रकार मिट्टी का शरीफा या हाथी देखने पर सचमुच के शरीफा या हाथी की याद आती है, उसी प्रकार ईश्वर की प्रतिमा देखने पर ईश्वर का ही स्मरण होता है।

(३)

जो राजा की प्रेयसी होती है वह क्या किसी भिखमंगे से प्रेमयाचना करेगी? जिसने भगवान् की कृपादृष्टि पाई है वह क्या कभी संसार के विषयों पर आसक्त होगा?

(४)

यदि तुम्हें कभी परिस्थितिवश किसी प्रलोभन से भरे स्थान में जाना पड़े तो तुम अपने साथ आनन्दमयी जननी को भी लेते जाओ। ऐसा करने से तुम्हारे मन के भीतर अनेक कुविचार, या बुरे काम करने की इच्छा उठने पर भी तुम बच जाओगे। जननी के निकट रहने पर तुम लाज के मारे बुरे काम नहीं कर पाओगे।

(५)

जगज्जननी के [illegible]

दुर्गा-स्तुति

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद, प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं त्वमीश्वरीदेवि चराचरस्य ॥१॥

आधारभूता जगतस्त्वमेका, महीस्वरूपेण यतः स्थितासि ।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैतदाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये ॥२॥

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या, विश्वस्य बीजं परमासि माया ।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्, त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥३॥

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः, स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्, का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥४॥

सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी । त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥५॥

सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते । स्वर्गापवर्गे देवि नारायणि नमोऽस्तुते ॥६॥

कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि । विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तुते ॥७॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके । शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते ॥८॥

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि । गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तुते ॥९॥

शरणागत दीनार्तपरित्राणपरायणे । सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तुते ॥१०॥

भावार्थ—शरणागत की पीड़ा दूर करनेवाली देवि ! हम पर प्रसन्न होओ । सम्पूर्णजगत की माता ! प्रसन्न होओ । विश्वेश्वरी ! विश्व की रक्षा करो । तुम्हीं चराचर जगत् की अधीश्वरी हो ।१। तुम इस जगत का एकमात्र आधार हो, पृथ्वीरूप में तुम्हारी ही स्थिति है । तुम्हारा पराक्रम अलङ्घनीय है । तुम्हीं जलरूप में स्थित होकर सम्पूर्ण जगत् को तृप्त करती हो ।२। तुम अनन्त बल सम्पन्न वैष्णवी शक्ति हो । इस विश्व की कारणभूता परामाया हो । देवि ! तुमने इस समस्त जगत् को मोहित कर रखा है । तुम्हीं प्रसन्न होने पर इस पृथ्वी पर मोक्ष की प्राप्ति कराती हो ।३। देवि ! सम्पूर्ण विद्याएँ तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं । जगत् में जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब तुम्हारी ही मूर्तियाँ हैं । जगदम्बा ! एक मात्र तुमने ही इस विश्व को व्याप्त कर रखा है । तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है ? तुम तो स्तवन करने योग्य पदार्थों से परे एवं परा वाणी हो ।४। जब तुम सर्वस्वरूपा देवी एवं स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली हो तब इसी रूप में तुम्हारी स्तुति हो गयी । तुम्हारी स्तुति के लिए इससे अच्छी उक्तियाँ और क्या हो सकती है ? ।५। बुद्धिरूप से सबके हृदय में विराजमान रहनेवाली तथा स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली नारायणी देवि ! तुम्हें नमस्कार है ।६। कला, काष्ठा आदि के रूप से क्रमशः परिणाम (अवस्था-परिवर्त्तन) की ओर ले जानेवाली तथा विश्व का उपसंहार करने में समर्थ नारायणी ! तुम्हें नमस्कार है ।७। नारायणी ! तुम सब प्रकार का मंगल प्रदान करनेवाली मंगलमयी हो । कल्याणदायिनी शिवा हो । सब पुरुषार्थों को सिद्ध करनेवाली, शरणागत-वत्सला, तीन नेत्रों वाली एवं गौरी हो । तुम्हें नमस्कार है ।८। तुम सृष्टि, पालक और संहार की शक्तिभूता, सनातनी देवी, गुणों का आधार तथा सर्वगुणमयी हो । नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ।९। शरण में आये हुए दीनों एवं [illegible] करनेवाली नारायणी देवी ! तुम्हें नमस्कार है ।१०।

सम्पादकीय सम्बोधन

आनन्दमयी का आगमन : वर्तमान संदर्भ

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

आनन्दमयी माँ दुर्गा का आगमन हम सब के घर पर हो रहा है—इस पावन शरत्काल में। हम माँ दुर्गा का हृदय से स्वागत करते हैं, अभिनन्दन वन्दन करते हैं।

माँ दुर्गा ब्रह्म की ही शक्ति हैं। साक्षात् ब्रह्म और माँ दुर्गा में कोई अन्तर नहीं है। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे : "**ब्रह्म और शक्ति अभिन्न हैं। एक को मानने से दूसरे को भी मानना पड़ता है। जैसे अग्नि और दहन-शक्ति - दहन-शक्ति के सिवा अग्नि को सोचा नहीं जा सकता, फिर अग्नि को छोड़कर उसकी दहन-शक्ति को नहीं सोचा जा सकता। वैसे ही सूर्य को छोड़कर सूर्य की किरणों को नहीं सोचा जा सकता। दूध को छोड़कर दूध के धवलत्व का विचार नहीं किया जा सकता, फिर दूध के धवलत्व के बिना दूध का विचार नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार ब्रह्म को छोड़ शक्ति को और शक्ति को छोड़ ब्रह्म को नहीं सोचा जा सकता।**" इस जगत् में जो कुछ है सब ब्रह्म की शक्ति का ही प्रसार है। उसके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। श्रीरामकृष्ण ने इसे बड़े अच्छे ढंग से समझाया है : "**जहाँ कहीं कार्य है सृष्टि, स्थिति, प्रलय है—वहीं शक्ति है! परन्तु जल स्थिर रहने पर भी जल है और तरंगपूर्ण होनेपर भी जल ही है। वह सच्चिदानन्द ही आद्याशक्ति है, जो सृष्टि, स्थिति, प्रलय किया करती है। जैसे** कप्तान (विश्वनाथ उपाध्याय, जो कलकत्ते में नेपाल सरकार के प्रतिनिधि थे। इन्हें श्रीरामकृष्ण 'कप्तान' कहा करते थे।) **जब कोई काम नहीं करता तब भी वही है और जब पूजा करता या लाट साहब से मिलने जाता है तब भी वही—वह एक ही है, भेद केवल उपाधि में है।**" तो ब्रह्म की वही शक्ति अर्थात् साक्षात ब्रह्म हमारे—हम सब के - कल्याण के लिए, मंगल के लिए, आनन्द और विश्रान्ति के लिए आज घर-घर में, द्वार-द्वार पर सदेह विराजमान हो रहे हैं। आवश्यकता है, हम उन्हें अन्तर की आँखों से पहचानें, उनका अन्तःकरण से स्वागत करें और विश्वमंगल के लिए उनसे प्रार्थना करें।

महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती, महादुर्गा एक ही ब्रह्म की शक्ति के विभिन्न नाम हैं। हम अपनी रुचि, वृत्ति और मनोभावना के अनुसार उन्हें भिन्न नामों से पुकारते हैं।

एक प्रश्न उठा करता है आपके मन में। यदि दाहकता आग की शक्ति है तो आग की ही उपासना क्यों न की जाय, दाहकता की क्यों? यह दुष्ट चिन्तन है। अग्नि का अग्नित्व दाहकता में ही है। दाहकता के बिना अग्नि क्या अग्नि रह जाती है? शक्ति के बिना ब्रह्म क्या ब्रह्म रह जाता है? **न शिवेन बिना शक्तिः न शक्त्या बिना शिवः।** शिव के बिना शक्ति और शक्ति के बिना शिव की कोई सत्ता नहीं रह जाती। शिव का 'इ' कार शक्ति है। इस शक्ति के अभाव में शिव शवतुल्य हो जाते हैं। अतः जो शिव की उपासना करते हैं वे प्रकारान्तर से शक्ति की ही उपासना करते हैं और जो शक्ति की उपासना करते हैं वे भी प्रकारान्तर से शिव की ही उपासना करते हैं। दोनों में भेद ही कहाँ हैं? भेद दृष्टि तो हमारे भ्रम और अज्ञान के कारण है।

देवी दुर्गा अनन्त शक्ति की ज्योति-निर्झरी हैं। वे महामाया, महाविद्या, महामेधा, महास्मृति, महा-देवी एवं महातेजोमयी हैं। वे ब्रह्मा, शंकर तथा इन्द्र आदि अनेकानेक देवताओं के शरीर से निकले महातेज से आविर्भूत हैं। उनके शरीर के निर्माण में सभी देवताओं का योग है। शंकर के तेज से उनका मुख, यमराज के तेज से उनके बाल, विष्णु के तेज से उनकी भुजाएँ, चन्द्रमा के तेज से दोनों स्तन और इन्द्र के तेज से उनके कटि प्रदेश का प्रादुर्भाव हुआ। इसी प्रकार सभी देवताओं ने अपने अस्त्र-शस्त्र प्रदान कर उन्हें इतनी शक्तिमती बना दी कि वे मधु कैटभ, शुम्भ-निशुम्भ आदि दैत्यों का क्षणभर में संहार करने में सफल हो सकीं। हमें इसी शक्ति की उपासना करनी होगी।

कोई भी देश शक्ति के बिना अपनी अस्मिता और अस्तित्व को बचाये नहीं रह सकता। महादेवी दुर्गा की उपासना से हमें इस बात की प्रेरणा मिलती है कि हम निर्बलता से सबलता तथा क्षुद्रता से विराटता की ओर बढ़ें। हम अपनी अंतर्शक्ति को बढ़ाएँ, अपने अन्ततेज को बढ़ाएँ, अपने अन्तरालोक को प्रदीप्त करें। कैसे हम यह कर सकते हैं? एकत्व से। आज हमारा देश एकता की जगह अनेकता की ओर, अभेद की जगह भेद की ओर तथा अखंडता की जगह खंडता की ओर बढ़ने लगा है। हम भीतर से चरमराने लगे हैं। ऐसे अवसर पर कोई भी हमें तोड़ दे सकता है। हम एक हल्का आघात भी नहीं झेल सकते। जरूरत है शक्ति-उपासना की। यदि अनेकता के मधु-कैटभ और खंडता के शुंभ-निशुंभ को हमें पराजित कर राष्ट्र-देव को सुरक्षित रखना है तो दुर्गतिनाशिनी, महादेवी दुर्गा की आराधना करनी ही होगी। शक्ति का निरादर कर हम बच नहीं सकते। स्वामी विवेकानन्द ने इस तत्व को गहराई से समझा था। उन्होंने अमेरिका से अपने गुरुभाई स्वामी शिवानन्दजी को लिखा था: "**शक्ति के बिना संसार का उद्धार नहीं हो सकता। क्या कारण है कि संसार के सब देशों में हमारा देश ही सब से अधिक बलहीन और पिछड़ा हुआ है? इसका कारण यही है कि वहाँ शक्ति का निरादर होता है।**" (पत्रावली पृ० २६०)

आज जिसके पास जो शक्ति है (तन, मन, धन) उसका अंश उत्सर्ग करने लगे तो एक व्यापक महा-शक्ति खड़ी हो जायगी और वह महादुर्गा राष्ट्र के सभी विनाशकारी असुरों का संहार करने में सक्षम हो सकेगी।

एक दूसरी बात की ओर भी मेरा ध्यान जाता है। हम घर-घर में, गली-मुहल्ले में देवी दुर्गा की पूजा तो करते हैं पर उसके मर्म को या तो नहीं समझते अथवा उसे जीवन में चरितार्थ नहीं करते। चण्डी में ऋषि कहते हैं—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदा।
स्त्रियाः समस्ताः सकला जगत्सु।

अर्थात्, 'हे देवि! सम्पूर्ण विद्याएँ तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं और जगत् में जितनी भी स्त्रियाँ हैं, वे सब तुम्हारी ही मूर्तियाँ हैं।' अब यदि हम देवी दुर्गा की सच्ची निष्ठा और श्रद्धा से पूजा करें तो उनकी प्रतिच्छवि हमें हर नारी में देखकर उनके प्रति भी समान आदर और श्रद्धा का भाव प्रदर्शित करना चाहिए। किन्तु आज हो क्या रहा है? एक ओर हम देवी की पूजा करते हैं और वहीं अश्लील गानों के रेकार्ड लाउड स्पीकरों पर बजाते हैं। प्रतिमा विसर्जन के क्षण अश्लील नृत्यों का आयोजन करते हैं तथा अन्य नारियों के प्रति असम्मानपूर्ण आचरण करते हैं। क्या हम अपनी माँ के अपने घर आने पर उनका ऐसा ही स्वागत करेंगे?

यह निश्चित है कि हमारी वर्तमान अधोगति, दुर्गति और पतनावस्था का यदि एकमात्र कोई कारण है तो यही कि हमने अपनी नारियों का सम्मान करना भुला दिया है। एक ओर शक्ति की उपासना दूसरी ओर नारी के प्रति असम्मान का भाव ! ऐसी दशा में हम शक्ति की उपासना नहीं, स्वांग करते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने इस ओर हमारा ध्यान बहुत पहले ही आकर्षित किया था एक पत्र में उन्होंने अमेरिका से लिखा था, **"क्या तुम जानते हो कि वास्तविक शाक्त या शक्ति का पुजारी कौन है ? जो यह जानता है कि जगत् में सर्वव्यापक महाशक्ति ईश्वर ही है और जो स्त्रियों को इस शक्ति का स्वरूप मानता है, वह शक्ति का पुजारी है। यहाँ (अमेरिका में) बहुत से मनुष्य अपनी स्त्रियों को इसी रूप में देखते हैं ···· यहाँ के पुरुष स्त्रियों का यथायोग्य आदर करते हैं। इसलिए ये इतने समृद्धिशाली इतने विद्वान्; इतने स्वतंत्र और इतने तेजस्वी हैं। और हम लोग स्त्री जाति को नीच, अधम, तुच्छ, एवं अपवित्र कहते हैं। फल हुआ—हम लोग पशु, दास, उद्यमहीन और दरिद्र हो गये।"** एक अन्य पत्र में स्वामीजी ने शिकागो से बड़े दर्द भरे स्वर में स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखा था— **"इस देश की-सी महिलाएँ दुनिया भर में नहीं हैं। वे कैसी पवित्र, स्वावलम्बी, और दयावती हैं। महिलाएँ ही यहाँ की सबकुछ हैं। विद्या, बुद्धि आदि सभी उन्हीं में हैं। 'या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेषु' (जो पुण्यात्माओं के घरों में स्वयं लक्ष्मीरूपिणी हैं, इसी देश में हैं, और पापात्मनां हृदयेष्व लक्ष्मीः (पापियों के हृदय में अलक्ष्मी रूपिणी हैं) हमारे यहाँ हैं—बस यही समझ लो ···· हे भाई, 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' (जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवता प्रसन्न रहते हैं)—वृद्ध मनु ने कहा है। हम महापापी हैं, स्त्रियों को 'घृणित कीड़ा' 'नरक का द्वार' इत्यादि कहकर हम अधःपतित हैं। बाप रे बाप ! कैसा आकाश पाताल का अन्तर है !"**

अतएव, दुर्गा पूजा की सार्थकता इस बात में है कि नारियों में मातृशक्ति का दर्शन करना सीखें, उनका उचित आदर-सम्मान करना सीखें। इसी की याद दिलाने प्रतिवर्ष माँ दुर्गा हमारे घर आती हैं।

एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः।
सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ॥
तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते।
सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति ॥ (चण्डी १२।३६-३७)

अर्थात् भगवती अम्बिका देवी नित्य होती हुई भी पुनः पुनः प्रकट होकर जगत् की रक्षा करती हैं। वे ही इस विश्व को मोहित करतीं, वे ही जगत् को जन्म देतीं तथा वे ही प्रार्थना करने पर सन्तुष्ट हो विज्ञान एवं स्मृति प्रदान करती हैं। आइए, हम भी प्रार्थना करें—

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तुते। (चण्डी ११ २४)

—हे सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी तथा सब प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न दिव्यरूपा दुर्गे देवि ! सब भयों से हमारी रक्षा करो; तुम्हें हमारा नमस्कार है।

शक्ति का स्रोत : दुर्गा

—स्वामी आत्मस्थानन्द
बेलुड़ मठ

(प्रस्तुत निबन्ध रामकृष्ण भावधारा की विख्यात बंगला पत्रिका उद्बोधन की आश्विन, १३९३ शारदीया संख्या में प्रकाशित रामकृष्ण मठ एवं मिशन के सहायक सचिव श्रीमत् स्वामी आत्मास्थानन्दजी महाराज के चिन्तनपूर्ण लेख का हिन्दी रूपान्तर है। रूपान्तरकार हैं—डॉ० केदारनाथ लाभ)

किसी भी व्यक्ति के जीवन पर दृष्टिपात करने पर देखा जाता है कि संग्राम—समस्त संघर्षों का अतिक्रमण करने के लिए अविराम निरन्तर युद्ध एवं अदम्य प्रयास—ही उसकी गति का एकमात्र सुर है। सत्व, रजः तमः—इन्हीं त्रिगुणात्मिका शक्ति की सृष्टि है यह सारा विश्व-चराचर। इसी से दैवी और आसुरी शक्तियों में निरन्तर युद्ध होता रहता है। रामायण और महाभारत इस अकाट्य सत्य के साक्षी हैं। त्याग और भोग, ज्ञान और अज्ञान, सत् और असत्, हिंसा और अहिंसा, सत्य और असत्य, जन्म और मृत्यु की धारा में बहते जाने के लिए ही जैसे हमलोगों का जीवन है—वह चाहे इच्छापूर्वक हो या अनिच्छापूर्वक। निचोड़ यह है कि हमलोग 'बलादिव नियोजितः' हैं। किन्तु सभी क्षेत्रों में एक अदृश्य महाशक्ति की क्रिया परिलक्षित होती है—सृष्टि और अनासृष्टि दोनों ही शक्ति द्वारा नियंत्रित हैं। इस अजानी, अदेखी और अनछुई शक्ति के समक्ष समस्त शक्तियाँ पराजित हैं—यह सुस्पष्ट है।

कभी-कभी इस विभिन्न वैचित्र्यमय, किन्तु मृत्यु में समाप्त होने वाले, नाटक के रहस्य के उद्घाटन के लिए नचिकेता, बुद्ध, शंकर चैतन्य, रामकृष्ण, विवेकानन्द जैसे तपोरत जीवन को देखा जाता है। साधना और सिद्धि के द्वारा उस आद्याशक्ति को प्राप्त कर हमलोगों के जीवन को वे अर्थपूर्ण, सुन्दर और महान बना देते हैं। उन लोगों का आह्वान सुनें, 'अरे तुम लोग कहाँ हो? आओ, आओ—मैंने अमृत का सन्धान कर लिया है। चलो इस पथ पर, अमर हो जाओगे—द्वन्द्वातीत, अनन्त आनन्द के अधिकारी—मा भैः।'

फिर एक अन्य श्रेणी के लोग असहाय अवस्था में दौड़े जाते हैं वनवासी, गिरि गुहावासी ऋषि के पास—पथ की खोज में। इसी दूसरी श्रेणी के दिग्भ्रमित हृदय, पथ की खोज करने वाले दो व्यक्तियों की कथा से आज हमलोग समस्त प्राणों के प्राण, समग्र चेतनाओं की चेतना, सभी शक्तियों का स्रोत एवं समस्त आनन्दों की निर्झर-धारा, दुरधिगम्य, लौकिक मनोबुद्धि वाले लोगों के लिए अगोचर, महामेधा, महास्मृति, महामाया, महाशक्ति दुर्गा का कुछ परिचय प्राप्त करेंगे।

समस्त सम्पदाओं से अपहृत एवं स्वजनों से परित्यक्त राजा सुरथ एवं वैश्य समाधि ने वनगमन करने पर भी क्रूर, स्वार्थी, योग परायण, निष्ठुर और कपटी परिजनों तथा भौतिक ऐश्वर्यों के मोह से मुक्त होकर असमर्थ एवं असमर्थता के लिए अत्यधिक मानसिक पीड़ा से पीड़ित एवं विपन्न अवस्था में दैव संयोग से मेधा ऋषि के आश्रम में मिले। वहाँ अपने मार्मिक दुःखों की आपस में विवेचना करने के उपरान्त इन मुनि के समीप श्रद्धा एवं विनय पूर्वक विशेष रूप से यह जानना चाहा :

तत्केनैतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि।
ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढ़ता॥

(अर्थात—हे महाभाग। हम दोनों समझदार हैं तो भी हम में जो मोह पैदा हुआ है, वह क्या है?

विवेकशून्य पुरुष की भाँति मुझमें और इस में भी यह मूढ़ता स्पष्ट दिखायी देती है।)

तब सुरथ और समाधि के मानसिक व्यतिक्रम के कारणों की व्याख्या के प्रसङ्ग में मेधा मुनि ने कहा—

तथापि ममतावर्ते मोहगर्ते निपातिताः।
महामाया प्रभावेण संसारस्थितिकारिणा॥
महामाया हरेश्चैतत्तया संमोह्यते जगत्॥
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति॥
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी।
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी॥

अर्थात्, संसार की स्थितिकारिणी महामाया के प्रभाव से जीवगण मोहरूपी गर्त और ममतारूपी भँवर में गिरते हैं! इन शक्ति ने ही सब को मोहाच्छन्न कर रखा है। देवी भगवती महामाया ही ज्ञानियों के भी चित्त को बलपूर्वक खींचकर मोह में डाल देती हैं। वे ही संसार की मुक्ति की हेतुभूता परमा विद्यारूपिणी और सनातनी हैं तथा वे ही संसार बन्धन की कारण अविद्या एवं ब्रह्मा, विष्णु आदि सम्पूर्ण ईश्वरों की भी अधीश्वरी हैं।

मेधा मुनि के उक्त उपदेश से सुरथ और समाधि के द्वारा उन महाशक्ति देवी के आविर्भाव और स्वभाव स्वरूप के सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक जानना चाहने पर मुनिवर मेधा ने दुर्गा देवी के अविर्भाव आदि सृष्टि-स्थिति प्रयलकारी महाशक्ति का विस्तृत वर्णन किया। मार्कण्डेय पुराण में इस तत्त्व का उल्लेख है।

अतुलनीया शक्तिरूपा देवी का आविर्भाव समस्त देवताओं की अनुपम तेजोराशि के एकत्र सम्मिलन से हुआ है। अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेव शरीरजम्। एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा॥'

इस नारी मूर्ति से माँ जगदम्बा त्रिशूल धारिणी माहेश्वरी शक्तिरूपा कौमारी प्रकट हुईं। ब्रह्मा, विष्णु महेश्वर आदि देवताओं की दीप्ति से जिस प्रकार देवी के अंग आदि उत्पन्न हुए हैं, उसी प्रकार उनके एवं प्रकृति के नाना अमोघ अस्त्रों से अनुपम अनवद्य रूपलावण्य से, अंगाभरणों से सिंहवाहिनी सुसज्जिता हुई हैं। माँ दुर्गा सर्वशक्तिमयी, सर्वशक्तिप्रदायिनी हैं। अस्त्र परिवृता रणरङ्गिणी असुरों का नाश करती हैं और उमाभयंकरा अशुभ शक्तियों का ध्वंस करती हैं। वे अपनी कल्याणी शक्ति से ज्ञानदात्री, मोक्ष विधायिनी विश्वपरिपालिनी हैं। चामुण्डा उग्रचण्डा और प्रचण्डा के रूप में वे पापकलुष रूपी असुरों का विनाश करनेवाली हैं। अपनी विश्वजननी शक्ति से वे वरदा प्रसन्ना हैं। कोमल एवं कठोर समस्त शक्तियों का संयुक्त मूर्त प्रकाश हैं माँ दुर्गा। दुर्गम्य होकर भी वे विश्व-कल्याण के लिए समस्त शक्ति एवं ऐश्वर्यमयी होकर महाशक्ति महामाया शुद्ध शरणागत मन वालों के लिए सुगम हो जाती हैं।

इस महाशक्ति दसभुजी प्रतिमा के साथ रहती हैं श्री एवं धनेश्वरी लक्ष्मी, विद्या और ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती, सिद्धिदाता गणेश, वैभव और पराक्रम की मूर्ति कार्तिक—क्योंकि संतुष्ट जीवन के लिए इन सब की आवश्यकता है। धर्म, अर्थ काम और मोक्ष से जीवन में पूर्णता आती है। इसी से देवी के साथ समाधिस्थ पूर्ण महेश्वर भी रहते हैं। सन्तुष्ट होने पर देवी दुर्गा अपनी महामाया के आवरण को हटा लेती हैं जिसके फलस्वरूप देवी का प्रकृत स्वरूप अनुभूत होता है— अखण्ड, अद्वितीया ब्रह्मशक्ति 'एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा'। इसी से इन महादेवी की स्तुति के द्वारा देवतागण विश्वचराचर के तत्वों में उनके स्वरूप का दर्शन कर प्रणाम करते हैं;

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः॥
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

अर्थात्, जो जीवों के इन्द्रिय वर्ग की अधिष्ठात्री देवी एवं सब प्राणियों में सदा व्याप्त रहनेवाली हैं उन व्याप्ति-देवी को बार-बार नमस्कार है। जो देवी चैतन्य रूप से

शक्ति-उपासना का तात्पर्य

—स्वामी हर्षानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद

माँ काली की अभीत उपासिका रानी रासमणि, जिन्होंने कलकत्ते में नये प्रसिद्ध मन्दिर-परिसर का निर्माण किया था, के जीवनी-लेखकों के द्वारा एक रोचक घटना का उल्लेख किया गया है। इस घटना ने वस्तुतः उनके जीवन को बदल दिया था। उनके घर आये हुए एक साधु ने उन्हें, अपने बचपन से करती आ रहीं श्रीराम की पूजा के बदले शक्ति की पूजा करने का परामर्श दिया। यद्यपि यह सुझाव इन्हें कुचक्र जैसा लगा, तथापि उनके संदेह और अविश्वास शीघ्र ही दूर हो गये और शक्ति-पूजा की आवश्यकता वे तुरन्त समझ गयीं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सैनिकों ने उनके घर पर आक्रमण कर दिया था और वे उस अत्याचार का अनुभव करने को बाध्य हो गयीं जिसे विदेशी शासन के अधीन कोई भी राष्ट्र भोगा करता है।

परमात्मा की पत्नी तथा जगन्माता के रूप में ईश्वर की शक्ति की आराधना करने की कल्पना विश्व के प्राचीनतम शास्त्र ऋग्वेद के काल में ही की गयी थी। इस कल्पना का पूर्णतम तथा अत्यन्त गरिमामय विकास हमलोग पुराणों और तन्त्रों में देखते हैं। "यदि ईश्वर की परिकल्पना पिता के रूप में की जा सकती है, तो माता के रूप में भी क्यों नहीं की जा सकती है?—मातृ-पूजा के पंथों के दर्शन के पीछे यही तर्क प्रतीत होता है। इन पंथों ने अपने दार्शनिक दृष्टिकोण एवं साधना-पद्धतियों को पूरे विस्तृत रूप से विकसित किया है।

मातृ-पूजा विषयक अधिक प्रसिद्ध ग्रंथों में से एक का नाम चण्डी है, जिसे मूल शास्त्र कह सकते हैं। इसे दुर्गा सप्तशती या देवी माहात्म्य भी कहते हैं। यह ७०० श्लोकों का एक लघु ग्रंथ है जो मार्कण्डेय पुराण का एक खण्ड है।

तीन खण्डों में विभक्त इस ग्रंथ में मधु-कैटभ, महिषासुर, रक्तबीज, निशुम्भ और शुम्भ नामक दैत्यों के वध और देवताओं की प्राचीन गरिमा के पुनर्स्थापन का वर्णन किया गया है।

पूरी कथा सुमेध ऋषि द्वारा सुरथ और वणिक समाधि को कही गयी है जिन्होंने अपने सगे-सम्बन्धियों द्वारा ठगे जाने के बाद उनके आश्रम में आश्रय लिया था। यद्यपि वे अपने प्रिय परिजनों के द्वारा ठगे गये थे तथापि उन दोनों के मन में अपने परिवार के प्रियजनों के प्रति काफी आसक्ति थी और यही उनकी परेशानी का कारण बन रही थी। जगन्माता की अद्भुत शक्तियों का उद्घाटन करनेवाली कथा ने उनके सन्देहों को दूर करने में सहायता पहुँचायी।

हमलोगों के लिए इस कथा के कई आशय हैं। जगन्माता शक्ति की आराधना हमारे चिन्तन और आचरण के भ्रान्तिपूर्ण तरीके को दूर करने में सहायता करनेवाली शक्ति हमें प्रदान कर सकती है। यह प्रथम तात्पर्य है। बुराई का अस्तित्व इस रचे हुए संसार का अनिवार्य अंश है—यह एक वास्तविकता है। यह भी एक वास्तविकता है कि कभी-कभी यह बुराई हमलोगों को व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों स्तरों पर अच्छाई प्रदान करती है। फिर भी इस बुराई को बर्दास्त नहीं करना चाहिए बल्कि उससे जूझ कर उसे समाप्त कर देना चाहिए—यह इसका दूसरा तात्पर्य है।

चण्डी के द्वितीय अध्याय में वर्णन हुआ है कि अनेक देवताओं, जो सब के सब क्रुद्ध थे, के शरीर से निकली शक्तियों से माता दुर्गा का अविर्भाव हुआ। वे उन देवताओं के विशेष अस्त्रों से सज्जित थीं। इससे एक तीसरा आशय निकलता है। पीड़ित समाज के सदस्यों को अपनी क्षुद्र प्रतिस्पर्धाओं को भूलकर संगठित होना चाहिए, अपने संसाधनों को एकत्र करना चाहिए और बुराई से लड़ने के लिए साधन-यंत्र तैयार करना चाहिए। साथ ही लड़ने की इच्छा भी होनी चाहिए। कि—

नमस्कार उनको नमस्कार उनको बार-बार नमस्कार है।

सभी शक्तियों के संयुक्त मिलन से देवी दुर्गा का आविर्भाव हुआ है। अतएव, उनकी पूजा का आयोजन करना एवं उसकी आवश्यकता सब के लिए है। इसी से उनकी पूजा के लिए समाज के सभी स्तरों के मनुष्य की शक्ति और सामर्थ्य से उत्पन्न वस्तुएँ चाहिए—चाहिए नया वस्त्र, चाहिए अलंकार, अस्त्र, जयडंका, चाहिए सिंह, धान फूल-फल, तरु लताओं की झाड़ियाँ, और चाहिए सभी नद-नदियों-सरोवरों का जल, सभी तीर्थों का जल और मिट्टी, हाथी का दाँत आदि। वर्जित मुहल्ले की मिट्टी की भी जरूरत है माँ के महास्नान के लिए। कुछ भी नहीं छूटेगा। ठीक ही तो कहा गया है—'या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता, नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः। 'संसार को अपना समझना। कोई पराया नहीं है—सभी अपने हैं'—देवी-मानवी श्रीसारदा ने उस दिन कहा था।

दिव्यदर्शन आनन्दमयी शक्ति का स्रोत श्रीदुर्गा चैतन्यमयी विश्वजननी—विश्व के प्रत्येक धूलकण के प्रति ममता और अशेष प्रेम के प्रगाढ़ सम्बन्ध में सदैव विश्वगत हैं। उनके साथ सम्बन्ध होने पर भी आपकी परम आत्मीयता से आबद्ध वे सर्वशक्तिमयी देवी हैं। उन्हें ही अपने जीवन का केन्द्र बिन्दु मानकर चल पाने से—जिस प्रकार महा उलझनमय परिस्थिति से प्रथभ्रान्त राजा सुरथ और वैश्य समाधि सफल मनोरथ हुए थे, अभया की करुणापूर्ण दृष्टि से जिस प्रकार उन लोगों के सारे भय मिट गये थे, जिस प्रकार उन दोनों ने दुर्जय शक्ति प्राप्त की थी, उसी प्रकार सभी लोगों का महाभाग्योदय होना सम्भव है। उनके कृपाकटाक्ष से नाशवान अक्षय और मरणशील जीव मृत्युंजय हो जाता है। सब में यही सर्वेश्वरी माँ दुर्गा अवस्थित हैं। हमलोग भी माँ में नित्य अनुभूति के द्वारा सब में अपने को पाकर हो जायँ अजर अमर और अभय। अतएव, आइए, आगमनी के सुप्रभात में हमलोग भी देवताओं के साथ सुर मिलाकर परमार्थ लाभ के लिए शक्ति के स्रोत श्रीदुर्गा को प्रणाम करें।

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तुते ॥
प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि।
त्रैलोक्य वासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ॥

+

जो निराकार हैं वहीं साकार भी हैं। साकार रूप भी मानना चाहिए। काली-रूप की चिन्ता करते हुए साधक काली-रूप के ही दर्शन पाता है। फिर वह देखता है कि वह रूप अखण्ड में लीन हो गया। जो अखण्ड सच्चिदानन्द हैं वही काली भी हैं।

—श्री श्रीरामकृष्ण
(वचनामृत : २।७९)

शक्ति-उपासना का तात्पर्य

—स्वामी हर्षानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद

माँ काली की अभीत उपासिका रानी रासमणि, जिन्होंने कलकत्ते में नये प्रसिद्ध मन्दिर-परिसर का निर्माण किया था, के जीवनी-लेखकों के द्वारा एक रोचक घटना का उल्लेख किया गया है। इस घटना ने वस्तुतः उनके जीवन को बदल दिया था। उनके घर आये हुए एक साधु ने उन्हें, अपने बचपन से करती आ रहीं श्रीराम की पूजा के बदले शक्ति की पूजा करने का परामर्श दिया। यद्यपि यह सुझाव इन्हें कुचक्र जैसा लगा, तथापि उनके संदेह और अविश्वास शीघ्र ही दूर हो गये और शक्ति-पूजा की आवश्यकता वे तुरन्त समझ गयीं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सैनिकों ने उनके घर पर आक्रमण कर दिया था और वे उस अत्याचार का अनुभव करने को बाध्य हो गयीं जिसे विदेशी शासन के अधीन कोई भी राष्ट्र भोगा करता है।

परमात्मा की पत्नी तथा जगन्माता के रूप में ईश्वर की शक्ति की आराधना करने की कल्पना विश्व के प्राचीनतम शास्त्र ऋग्वेद के काल में ही की गयी थी। इस कल्पना का पूर्णतम तथा अत्यन्त गरिमामय विकास हमलोग पुराणों और तन्त्रों में देखते हैं। "यदि ईश्वर की परिकल्पना पिता के रूप में की जा सकती है, तो माता के रूप में भी क्यों नहीं की जा सकती है?—मातृ-पूजा के पंथों के दर्शन के पीछे यही तर्क प्रतीत होता है। इन पंथों ने अपने दार्शनिक दृष्टिकोण एवं साधना-पद्धतियों को पूरे विस्तृत रूप से विकसित किया है।

मातृ-पूजा विषयक अधिक प्रसिद्ध ग्रंथों में से एक का नाम चण्डी है, जिसे मूल शास्त्र कह सकते हैं। इसे दुर्गा सप्तशती या देवी माहात्म्य भी कहते हैं। यह ७०० श्लोकों का एक लघु ग्रंथ है जो मार्कण्डेय पुराण का एक खण्ड है।

तीन खण्डों में विभक्त इस ग्रंथ में मधु-कैटभ, महिषासुर, रक्तबीज, निशुम्भ और शुम्भ नामक दैत्यों के वध और देवताओं की प्राचीन गरिमा के पुनर्स्थापन का वर्णन किया गया है।

पूरी कथा सुमेध ऋषि द्वारा सुरथ और वणिक समाधि को कही गयी है जिन्होंने अपने सगे-सम्बन्धियों द्वारा ठगे जाने के बाद उनके आश्रम में आश्रय लिया था। यद्यपि वे अपने प्रिय परिजनों के द्वारा ठगे गये थे तथापि उन दोनों के मन में अपने परिवार के प्रियजनों के प्रति काफी आसक्ति थी और यही उनकी परेशानी का कारण बन रही थी। जगन्माता की अद्भुत शक्तियों का उद्घाटन करनेवाली कथा ने उनके सन्देहों को दूर करने में सहायता पहुँचायी।

हमलोगों के लिए इस कथा के कई आशय हैं। जगन्माता शक्ति की आराधना हमारे चिन्तन और आचरण के भ्रान्तिपूर्ण तरीके को दूर करने में सहायता करनेवाली शक्ति हमें प्रदान कर सकती है। यह प्रथम तात्पर्य है। बुराई का अस्तित्व इस रचे हुए संसार का अनिवार्य अंश है—यह एक वास्तविकता है। यह भी एक वास्तविकता है कि कभी-कभी यह बुराई हमलोगों को व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों स्तरों पर अच्छाई प्रदान करती है। फिर भी इस बुराई को बर्दाश्त नहीं करना चाहिए बल्कि उससे जूझ कर उसे समाप्त कर देना चाहिए—यह इसका दूसरा तात्पर्य है।

चण्डी के द्वितीय अध्याय में वर्णन हुआ है कि अनेक देवताओं, जो सब के सब क्रुद्ध थे, के शरीर से निकली शक्तियों से माता दुर्गा का अविर्भाव हुआ। वे उन देवताओं के विशेष अस्त्रों से सज्जित थीं। इससे एक तीसरा आशय निकलता है। पीड़ित समाज के सदस्यों को अपनी क्षुद्र प्रतिस्पर्धाओं को भूलकर संगठित होना चाहिए, अपने संसाधनों को एकत्र करना चाहिए और बुराई से लड़ने के लिए साधन-यंत्र तैयार करना चाहिए साथ ही लड़ने की इच्छा भी होनी चाहिए। जि-

विष्णु एवं अन्य देवताओं के क्रोध का यही अर्थ है।

ईश्वर सदैव भले लोगों के पक्ष में, सही लोगों के पक्ष में रहते हैं। इसलिए विलम्ब से ही सही, विजय-श्री उन्हें मिल कर रहेगी। यह अन्तिम तात्पर्य है।

आज अपने समाज की वर्तमान अवस्था के विश्लेषण की आवश्यकता है और हमें यह देखना है कि चण्डी जो सीखें हमें देती हैं उन्हें हम किस प्रकार क्रियान्वित कर सकते हैं। "ईर्ष्या भारत का नाम है!" —स्वामी विवेकानन्द ने कहा था। आपसी ईर्ष्याएँ और कलह हमलोगों के देश के पतन का एकमात्र सबसे बड़ा कारण रहे हैं। हजारों वर्षों की गुलामी ने हम में दासता की मनोवृत्ति उत्पन्न कर दी है जिससे मुक्त होने में हम असमर्थ सिद्ध हो रहे हैं।

महिषासुर तब तक देवताओं को अपने वशीभूत करने में सफल रहा जब तक वे आपस में बँटे थे। किन्तु उनकी सम्मिलित शक्ति के हाथों वह पराजित हो गया। इसी प्रकार, जब तक हमलोग आपस में एक दूसरे से बँटे रहेंगे तब तक छोटे देशों या छोटे दलों द्वारा भी पिटते और छिन्न-भिन्न किये जाते रहेंगे। जब हम आपस में मिल जायँगे और सम्मिलित इच्छा शक्ति का उपयोग करेंगे तो वह शक्ति हमारे सभी भावी आक्रामकों की रीढ़ तोड़ देगी।

श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि अहितकारी इरादे से दूषित क्रोध बुरा है, किन्तु यदि तुम इस संसार में रहना चाहते हो, जो सभी तरह के लोगों से भरा है तो आत्म-रक्षा के लिए क्रोध एवं बल का प्रदर्शन निश्चित रूप से आवश्यक है। इसलिए, एक जागरूकता और वास्तविक असंतोष, या मात्र एक सात्विक क्रोध भी हमें अपने वैरियों से अपनी शक्तिपूर्ण प्रतिरक्षा करने में सहायता प्रदान करेगा।

सम्मिलित होना, अपने को संगठित करना और अपनी सुरक्षा करना तभी संभव होना है जब हमलोगों को इसकी आवश्यकता का दृढ़ विश्वास होने लगता है। यदि हमलोगों का चिन्तन विशृंखलित या गड़बड़ है, तब ऐसा विश्वास कभी नहीं हो सकता है। जब से हम-लोगों के राजनेताओं ने घोषणा की कि हम लोगों ने धर्म-निरपेक्ष राज्य के आदर्श को वरण किया है, तब से इसको लागू करने में हो रही गड़बड़ियों का अंत नहीं है, यहाँ तक कि प्रारम्भिक नीतिपूर्ण विचारों तथा नैतिक आधारों को भी छोड़ दिया गया है। यद्यपि हमारे संविधान निर्माताओं ने "धर्म निरपेक्ष" शब्द का प्रयोग, किसी अन्य धर्म में हस्तक्षेप नहीं करने या दूसरों की अपेक्षा किसी एक का पक्ष नहीं लेने वाले राज्य के सीमित अर्थ में किया था, तथापि इस शब्द को इतना गलत समझ लिया गया है या जान बूझकर इसका अर्थ-परिवर्तन कर दिया गया है कि स्वयं धर्म को ही क्रुद्ध दृष्टि से देखा जाने लगा है। चूँकि अन्य धर्मों के सुसंगठित तथा लड़ाकू उपासक सरकार या राजनेताओं के ऐसे रवैयों को बर्दाश्त नहीं करते इसलिए "नरम हिन्दू" ही सदैव इस प्रवृत्ति का कुफल भोगते हैं। यह कहना बहुत गलत नहीं होगा कि हमलोगों की धर्मनिरपेक्षता तेजी से हिन्दूधर्म—विरोधी होती जा रही है। अतएव, जिस प्रकार के धर्मनिरपेक्षवाद का हम लोग व्यवहार कर रहे हैं, उसकी अपेक्षा हमलोगों को शक्ति-वाद की आवश्यकता है।

इस संकट की घड़ी में परमेश्वरी माता शक्ति की उपासना निश्चय ही उसी प्रकार हमलोगों की विभ्रान्ति को दूर करने में सहायता प्रदान करेगी जिस प्रकार सुरथ और समाधि की की थी। वह हम में शक्ति का संचार करेगी और हमलोगों को और अधिक गतिवान बनने में सहायता प्रदान करेगी। फिर भी हमलोगों को ध्यान रखना चाहिए कि यह उपासना बाह्य विधि एवं अनुष्ठान की अपेक्षा अधिक सामाजिक और क्रियात्मक होनी चाहिए।

जगन्माता हम सब को आशीर्वाद दें।

हमारा भविष्य ज्योतिर्मय है

—स्वामी रंगनाथानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, हैदराबाद

(श्रीरामकृष्ण देव के १५० वें अवतरण-उत्सव के अवसर पर रामकृष्ण योगोद्यान मठ, कांकुड़-गाछी में श्रीमत स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज का एक साक्षात्कार लिया था— बंगला पत्रिका देश की ओर से श्री हर्षदत्त ने। इसके हिन्दी अनुवाद का पूर्वार्द्ध गत अंक में छपा था। प्रस्तुत अंश उसीका उत्तरार्द्ध है। अनुवादक हैं—डा० केदारनाथ लाभ।)

देश : 'चिन्तन' पर स्वामी विवेकानन्द ने विशेष जोर दिया है। किन्तु वर्तमान समय में, इस जटिल समयाभाव से भरे जीवन में, आध्यात्मिक और नैतिक गिरावट की कठिन घड़ी में, लोग चिन्तन करने का सयय कब पायेंगे? अन्नचिन्ता, अर्थचिन्ता, तथा स्वस्थ रूप से वचे रहने की चिन्ता ने ही लोगों को ग्रसित कर रखा है। इसके अतिरिक्त नित्यनियत विलक्षण समस्याओं से लोग जर्जर और चिन्तित हैं। ऐसी स्थिति में लोग सत् चिन्तन, मानवीय गुणों के सुकुमार प्रयोगों का चिन्तन, निकट के लोगों को प्रेम करने का चिन्तन—ये सब कब करेंगे?

रंगनाथानन्द : देखो, किसी भी समाज में मुट्ठीभर लोग ही चिन्तन करने का दायित्व लेते हैं। दूसरे लोग उस चिन्तन की फसल काटकर अपने काम में लगाते हैं। उस चिन्तन को, अपना चिन्तन कहकर ग्रहण करते हैं। किन्तु यह इस बात पर निर्भर करता है कि वे मुट्ठीभर चिन्तनशील लोग किस प्रकार एवं कैसे सम्पूर्ण जनसमूह को प्रभावित कर पाते हैं।

इधर हमलोगों के समाज में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गयी हैं। इन समस्याओं के धक्के से, इन समस्याओं के समाधान की राह ढूँढ़ने जाने पर साधारण आदमी सभी चीजों के प्रति चिन्तन शुरू करने को बाध्य होता है।

जैसे, हमलोगों की शिक्षा की समस्या को ही लो। आजकल इस समस्या के लिए शिक्षा में सुधार करने की बात सोची जा रही है। गत पाँच वर्षों से शिक्षा सुधार की बात सोचते-सोचते एक नये समाधान का मार्ग प्रशस्त हुआ है। सारे भारतवर्ष में शिक्षा पद्धति में परिवर्तन के सम्बन्ध में चिन्तन-विवेचन शुरू हो गया है। क्योंकि जिस प्रकार की शिक्षा दी जा रही थी उससे हमलोगों में कोई भी संतुष्ट नहीं हो पा रहे थे। हमलोगों ने कहना शुरू कर दिया था कि एक परिवर्तन चाहिए, एक परिवर्तन चाहिए। इसके फलस्वरूप, सामान्य होने पर भी भारत सरकार ने एक नयी पद्धति की घोषणा की है। इससे हमलोग देखते हैं कि जीवन में समयाभाव की समस्या और जीवन-यापन करने की प्रत्यक्ष समस्या के रहने के बावजूद साधारण लोगों ने चिन्तन करना आरम्भ कर दिया है। वे जानना चाहते हैं कि कहाँ त्रुटि है, कहाँ सुधार की आवश्यकता है। एक और उदाहरण, हमलोगों की अजस्र अनन्त प्राकृतिक सम्पदा चारों ओर बिखरी पड़ी है। अतएव, चाहे जिस कारण से ही हमलोग उस सम्पति का उपयोग नहीं कर पा रहे हैं, सब के मन में आज चिन्तन उत्पन्न हो गया है कि देश में इस सम्पति के रहने के बावजूद हमलोग आशानुरूप उन्नति क्यों नहीं कर पा रहे हैं? दरिद्रता को दूर करने में हमलोग क्यों असमर्थ हो रहे हैं? हमलोग की जनसंख्या असीम है, हमारे देश में वैज्ञानिकों की कमी नहीं है। तकनीशियनों का अभाव नहीं है। तब फिर गड़बड़ी कहाँ है?

देश : महाराज, यही एक जिज्ञासा हमलोगों के मन में भी है।

रंगनाथानन्द : निश्चय ही किसी वस्तु का अभाव है। अभी सभी स्तरों पर चिन्तन होने लगा है—क्या अभाव है, किस वस्तु का अभाव है, किस प्रकार उस अभाव से मुक्त हुआ जा सकता है ? सारे भारत में मैंने अनेक लोगों से बातचीत की है, और देखा है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी अच्छे विषय को लेकर चिन्तित है। यह चिन्तन ही एक दिन रास्ता खोल देगा। बहुत लोगों ने चिन्तनपूर्ण अच्छे-अच्छे लेख पढ़े हैं, पुस्तकों का मंथन शुरू किया है। वे संसार के ज्ञान भंडार से समस्याओं के समाधान की प्रेरणा पाना चाहते हैं। यद्यपि भारत की अवस्था बहुत जटिल है, हमलोगों की समस्याएँ अनगिनत हैं, तथापि इनके बीच मात्र एक ही आशा का आलोक—जिसने हमलोगों के जीवन को सहनीय बना रखा है—वह यह है कि मनुष्य रुकता नहीं है। आदमी नव की खोज करता है।

अभी भारतवर्ष एक विचित्र स्थिति में है। इस स्थिति में कोई भी परामर्श अंतिम नहीं है इसका कारण यह है कि सारतत्व से शून्य एक तीव्र उत्तेजना और उद्वेलनों के बीच से हमलोग इन दिनों गुजर रहे हैं। राजनैतिक जगत की ओर देखने से इसे और भी स्पष्ट रूप से जाना जा सकता है। आज जो समाधान दिखाई पड़ता है वही कल अव्यवहार्य हो जाता है। प्रतिदिन, प्रति पल व्यवस्था और मार्ग में परिवर्तन करना पड़ता है। एकमात्र यही समाधान का मार्ग है, आज यह नहीं कहा जा सकता है।

तेजी से बदलाव की इस घड़ी में हमलोगों के लिए धैर्य और प्रखर चिन्तन शक्ति की आवश्यकता है। यद्यपि आज के समाज में हिंसक व्यक्ति, शान्त व्यक्ति और धार्मिक व्यक्ति एक साथ रह रहे हैं। फिर भी हमलोग इस घड़ी को सुख की घड़ी नहीं कह पाते हैं। कारण यह है कि यह सृजन का समय है। कुछ करने का समय है। निश्चेष्ट होकर सुख की गोद में सोये रहने का यह समय नहीं है। यह पुरातन को तोड़ फेंकने का समय है। साथ-साथ नये के निर्माण करने का भी समय है। स्वामी जी ने इसी नव निर्माण करने का स्वप्न देखा था।

देश : इस प्राणमय, आशा का संचार करने वाले कार्य में रामकृष्ण मिशन ने कहाँ तक अपने को नियोजित किया है ?

रंगनाथानन्द : पूरी तरह नियोजित किया है। अपरिमेय रूप से। किन्तु यह विराट कार्य अकेले रामकृष्ण मिशन का कार्य नहीं है। स्वदेश के लोगों के मन में नयी प्रेरणा जगाने का कार्य केवल मठ-मिशन करेगा —ऐसा सोचने से नहीं चलेगा। ऐसा होने से कार्य शीघ्र बन्द हो जायगा। सब को आगे आना होगा। जैसे मान लो रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा के प्रचार का कार्य है। केवल मात्र साधु-संन्यासीगण यह कार्य करेगें, सो नहीं। यह भावधारा—जो हर दृष्टि से आधुनिक है, एक युगान्तकारी चेतना है—उसे सब के बीच फैला देना होगा। सभी अनुरागियों को इसके लिए आगे आना होगा। लोग इस अनन्य भावधारा को अपने जीवन में अपनी रुचि के अनुसार ग्रहण कर परिपूर्णता के पथ पर आगे बढ़ेंगे। हमलोग सम्मिलित रूप से उनके निकट इस भावादर्श को पहुँचा देंगे। यह हर्ष की बात है कि पूरे देश में अनेक लोग आज इस कार्य में अपना योगदान कर रहे हैं।

देश : आपके विवेचन से एक विषय के सम्बन्ध में स्पष्ट संकेत मिलता है। वह यह कि मठ-मिशन के साथ सीधे तौर से नहीं जुड़े रहने पर भी अनेक लोग रामकृष्ण विवेकानन्द की भावधारा का अवलम्बन लेकर कार्य कर रहे है। ये लोग किस प्रकार कार्य कर रहे हैं ?

रंगनाथानन्द : कई लोग कार्य कर रहे हैं। यह कार्य दो प्रकारों से होता है। एक, भावगत दिशा से। दो सीधे कर्म की भित्ति पर। सीधे दरिद्रतम दुर्बलतम लोगों अथवा आदिवासी जनसाधारण के बीच जाकर कार्य हो रहा है—गावों में, बाजारों में, पहाड़ों पर और जंगलों में। इस प्रकार जो लोग कार्य कर रहे हैं उन में कन्या कुमारी के विवेकानन्द केन्द्र का नाम सबसे पहले

स्मरणीय है। ये लोग आश्चर्यजनक कार्य कर रहे हैं।

देश : केवल स्वामीजी की भावधारा को ग्रहणकर ये लोग कार्यों में कूद पड़े हैं। रामकृष्ण मिशन के साथ जुड़ना इनके लिए बड़ा विषय नहीं है। बड़ा है कार्य। अथवा, मठ-मिशन की सहायता नहीं पाने पर कोई भी कार्य नहीं होगा—ऐसा भी वे लोग नहीं सोचते। ऐसा नहीं है क्या ?

रंगनाथानन्द : ठीक ऐसा ही है। ये सामाजिक संस्थाएँ स्वयं अपने बीच ही परस्पर सहायता कर लेती हैं। पूरी तरह आत्मपंथी हैं। स्वतंत्र और स्वाधीन कार्यसमिति के द्वारा ये लोग अपनी कल्पनाओं को चरितार्थ करते हैं। समग्र भारत में समर्पित-प्राण वाले कार्यकर्त्ताओं को लेकर ये लोग कार्य में लग गये हैं। कहीं-कहीं सरकार इनलोगों की सहायता करती है। रामकृष्ण मठ-मिशन के बाहर जैसे सारदा मठ महिलाओं के लिए आगे आया है। उसने बड़े पैमाने पर कार्य शुरू कर दिया है। उसकी महिलाएँ अपने मन से कार्य करती हैं।

बंगाल के नवनीहरण मुखोपाध्याय के विवेकानन्द युवमहामंडल की बात इस विषय में विशेष रूप से उल्लेखयोग्य है। बंगाल, बिहार, उड़ीसा एवं आन्ध्र प्रदेश में युवामहामंडल निःस्वार्थभाव से कार्य कर रहा है। बिना देखे विश्वास नहीं कर पाओगे। कितनी आन्तरिकता से, त्याग एवं सेवा की पूर्ण विभा से परिशीलित होकर ये लोग कार्य करते हैं।

इस प्रसंग में मुझे उड़ीसा के दिगम्बर पात्र की बात याद आ रही है। वहाँ रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा को सम्बल बनाकर जो कार्य उन्होंने शुरू किया था उसे आज सरकारी स्वीकृति प्राप्त हो गयी है। इस प्रकार अनेक संस्थाएँ, अनेक संगठन, अनेक व्यक्ति पूरी तरह अपने प्रयास से अभूतपूर्व कार्य कर रहे है।

देश : आजकल अनेक लोगों ने कहना शुरू किया है कि रामकृष्ण मिशन के कार्य सीमाबद्ध और गतानुगतिक हैं। पश्चिम बंगाल में जो लोग मार्क्सवादी हैं, जो रामकृष्ण मिशन के धर्माधारित मानवतावादी कर्मकाण्ड के प्रति पर्याप्त आस्थावान नहीं हैं, वे एवं अन्य अनेक लोग यह अभियोग लगाते हैं कि रामकृष्ण मिशन के कार्य सार्वजनीन नहीं, सीमाबद्ध हैं। कई क्षेत्रों में गोष्ठीबद्ध हैं। इस विषय में आपका क्या अभिमत है ?

रंगनाथानन्द : ये लोग ऐसी बातें कह ही सकते हैं। क्योंकि इनलोगों के मत और पथ रामकृष्ण मिशन के मत और पथ से पूर्णतः भिन्न हैं। पृथक मतावलम्बी का विचार ऐसा होगा, इसमें फिर आश्चर्य क्या ? दूसरी बात, रामकृष्ण मिशन ने कभी भी अपने दिगन्त व्यापी कार्यों की सूची कहीं भी प्रस्तुत नहीं की। अतः कोई-कोई तो सोच ही सकते हैं कि मठ-मिशन के कार्य सीमाबद्ध हैं। रामकृष्ण मिशन खेतों-मैदानों में मंच बनाकर यह बात कहने नहीं निकलता है कि देखो, हमलोग यह कर रहे हैं, इतनी दूर तक आगे बढ़ गये हैं।

मिशन का कार्य है नीरव की साधना। ये कार्य निःशब्द होते हैं—धीरे-धीरे किन्तु दृढ़ भाव से। अलक्षित रूप से, किन्तु प्रत्येक पदक्षेप से उसके अस्तित्व का अनुभव होता है। उसका प्रत्येक कार्य होता है अनुच्चारित जप-मन्त्र की साधना की भाँति। यह बात निश्चय ही स्वीकार करनी पड़ेगी कि संसार में सभी बड़े कार्य निःशब्द, चुपचाप, लोगों की आँखों से ओझल होकर ही हुए हैं। बहुत बाद में जनसाधारण उस विराट् और स्वराट् कर्मयज्ञ के अस्तित्व का अनुभव करता है। एक परिवर्तन जो सूचित हुआ है, यह समझ पाता है।

विगत तीस वर्षों में हमलोगों के देश में अनेक परिवर्तन हुए हैं—सामूहिक परिवर्तन एवं व्यक्तिगत परिवर्तन। जैसे देखो, जिन लोगों ने पहले मास्को या पेकिंग से प्रेरणा पायी, वे फिर आज भारत की ओर अभिमुख हुए हैं। सोवियत रूस या चीन हमलोगों को जितनी प्रेरणा दे सकता है, उससे कहीं अधिक अपने देश में ही प्रेरणा है। उसी महान प्रेरणा का नाम है स्वामी विवेकानन्द। कम्यूनिस्ट देशों के लोग आज विवेकानन्द की वाणी और भावना के प्रति निरन्तर

सम्मान व्यक्त कर रहे हैं। और स्वामीजी तो हमलोगों के ही अपने हैं।

विवेकानन्द भारतीयों के समक्ष आद्यन्त एक अनन्त प्रेरणा हैं। रोमाँ रोलाँ को लगा था कि स्वामीजी केवल भारतवर्ष के ही नहीं, सभी युगों एवं सभी देशों के मुक्ति कामी लोगों के लिए एक ज्वलन्त प्रेरणा हैं। किन्तु एक बात यहाँ मन में रखनी होगी कि स्वामीजी की प्रेरणा या कार्य राजनैतिक चिन्तन को आधार बनाकर गठित नहीं है। राजनैतिक कार्य कोलाहल से मुखर, प्रचार को सर्वस्व माननेवाला होता है। उसे बाहर से ही पकड़ा जा सकता है, देखा जा सकता है। किन्तु रामकृष्ण मिशन का कार्य निःशब्द होता है किन्तु प्रेरणावाही होता है।

इस सन्दर्भ में स्वामीजी की एक अच्छी बात याद आ रही है। उन्होंने कहा था, स्निग्ध शुभ्र ओस जब गिरती है तब मालूम नहीं पड़ती है। केवल प्रातः काल में फूटनेवाली गुलाब की कली उस ओस कण को धरे रखती है। भारतवर्ष के सभी बड़े-बड़े चिन्तन ठीक इसी ओस कण की भाँति हैं।

इस देश के लोग आज अनुभव करते हैं कि रामकृष्ण मिशन के माध्यम से एक बड़ी तरह का परिवर्तन मौन भाव से घटित हो रहा है। सर्वसाधारण के बीच वह फैल रहा है। रामकृष्ण—श्री माँ—स्वामीजी की वाणी का एक प्रत्युत्तार आने लगा है। यह अनुभव हो रहा है। यह प्रत्युत्तार समग्र विश्वव्यापी है।

इस प्रसंग में एक पुस्तक की बात याद आ रही है। 'वर्ल्ड थिंकर्स ऑन रामकृष्ण विवेकानन्द।' प्रकाशक रामकृष्ण मिशन इंस्टिट्यूट ऑफ कल्चर, गोलपार्क। इस पुस्तक में पूर्व-पश्चिम के विभिन्न मनीषियों, मास्को-पेकिंग के कम्यूनिज्म के विश्वासी बुद्धिजीवियों ने जिन शब्दों में राककृष्ण—विवेकानन्द के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है वह एक बात में अनिंदनीय है। इस भावधारा में उन लोगों ने अपने आत्मचिन्तन का प्रतिफल देखा है। स्वामीजी के चिन्तन के साथ उनलोगों ने एकता का अनुभव किया है। विवेकानन्द के चिन्तन में इनलोगों ने समग्र भारत के रूप को प्रत्यक्ष किया है। पूर्व और पश्चिम के मनीषियों को लगता है कि बाहर का कोई भी मतवाद या राजनैतिक आदर्श नहीं, विवेकानन्द का भाव-चिन्तन ही भारतवर्ष को सभी ओर से आज श्रेष्ठता प्रदान कर सकता है।

देश : वर्तमान भारत में शिक्षाविस्तार में रामकृष्ण मिशन ने कई महत्वपूर्ण भूमिकाएँ ग्रहण की हैं। मिशन के अनेक प्रतिष्ठानों से अनेक अच्छे लड़के निकले हैं। देश के विभिन्न दायित्वपूर्ण पदों पर वे प्रतिष्ठित हैं। ऊँचे पदों पर कार्यरत हैं। किन्तु कई लोग कहते हैं कि रामकृष्ण-विवेकानन्द के भावादर्श के प्रचार एवं समाज के गठन में इन लोगों का कोई प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता है। ऐसा क्यों होता है ?

रंगनाथानन्द : पहले ही मैं कहूँगा, इसका एक विशेष कारण है। इसे ध्यान में रखना होगा कि रामकृष्ण भावान्दोलन कोई साम्प्रदायिक कर्म नहीं है। अथवा रामकृष्ण मिशन किसी साम्प्रदायिक धर्म-सिद्धान्त का स्रष्टा नहीं है। फलतः दूसरे साम्प्रदायिक आन्दोलन (सेक्टेरियन मूवमेन्ट) जिस प्रकार अपने निजी दृष्टिकोण के प्रचार के लिए छात्र-छात्राओं, भक्तों के दलों या कार्यकर्त्ताओं को तैयार करता है, रामकृष्ण मिशन वैसा नहीं करता। रामकृष्ण मिशन अपनी भावधारा से, भावादर्श से एक जीवन को अनुप्राणित करता है। बस यहीं तक। जो अनुप्राणित हुआ, अब उसके ऊपर निर्भर करेगा कि वह क्या करेगा। दूसरों के बीच इस भाव का प्रचार करेगा कि नहीं करेगा। इस विषय में रामकृष्ण मिशन कोई भी विचार लादता नहीं।

विवेकानन्द ने कभी भी रामकृष्ण भावान्दोलन को सेक्टारियनों, साम्प्रदायिकों की तरह व्यवहार करने की बात नहीं सोची। स्वामीजी सोचते, प्रत्येक मनुष्य को मौलिक स्वाधीनता है—सोचने की, चिन्तन करने की, स्वीकारने-नकराने की। मैंने तुम्हें यह भाव दिया, अब यह पूर्णतः तुम्हारे ऊपर निर्भर करेगा कि तुम इसे किसी को दोगे या नहीं दोगे। मनुष्य की आत्मिक स्वाधीनता

पर स्वामीजी ने जोर दिया था। स्वामी के मत से शिक्षा की पहली शर्त ही है मनुष्य की यही आत्मिक स्वाधीनता। उन्होंने कहा था, अर्जित ज्ञान एवं प्राप्त की गयी शिक्षा का मनुष्य किस प्रकार अपने जीवन में, समाजिक पटभूमिका में व्यवहार करेगा, प्रयोग करेगा—इस विषय में उसे पूरी स्वाधीनता है। इस क्षेत्र में कोई उसके ऊपर दबाव नहीं डाला पाता। गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को ठीक इसी दृष्टिभंगी से कहा था, मैंने तुम्हें जो ज्ञान प्रदान किया, इसे तुम किस रूप में ग्रहण करोगे, कर्म में प्रयोग करोगे, यह पूर्णतः तुम्हारे ऊपर निर्भर करता है। रामकृष्ण मिशन की भावधारा के प्रचार के क्षेत्र में भी इसी एक ही दृष्टिकोण को ग्रहण किया गया है। जो इस भावधारा के सम्पर्क में आये हैं, उनके ऊपर निर्भर करता है—इसका प्रचार वे करेंगे कि नहीं करेंगे। यदि इसे अच्छा समझते हैं, करेंगे, स्वतः स्फूर्त भाव से ही करेंगे, बुरा समझते हैं—परित्याग करेंगे। इस विषय में कोई बाध्यता नहीं है।

देश : फिर भी जो अनुप्राणित हैं, इस भावधारा में दीक्षित हैं, उनसे साधारण लोग कुछ पाने की आशा करेंगे ही।

रंगनाथानन्द : प्रसन्नता की बात है कि आज इस भावधारा को कागज-कलम से या ऊँचे स्वर से प्रचारकर लोगों के सामने पहुँचाना नहीं पड़ता है। यह भावादर्श अपनी शक्ति से लोगों को अपनी ओर खींच रहा है। चुम्बक की तरह। इस भावान्दोलन के साथ हर आदमी आज अपने को जोड़ना चाहता है। जैसे देखो, दक्षिण भारत में रामकृष्ण मिशन द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं के इंजिनियरिंग पाठ्यक्रम के छात्रगण अपनी पढ़ाई समाप्त करने के पहले ही बड़े-बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों से नियुक्ति पत्र पाते हैं। संस्थाएँ इन्हें बुला ले जाती हैं—तुमलोग आओ। इन संस्थाओं के लोग यह महसूस करते हैं कि रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा में जो छात्र मनुष्य हुए हैं, पढ़े-लिखे हैं, वे सत् हैं, परिपूर्ण हैं, उनका चरित्र निष्कलुष है। अतएव, उनकी संस्था में कर्मचारी के रूप में इन छात्रों के पाने का अर्थ ही हुआ एक शुद्ध खाँटी रत्न का संचयन।

अथवा कलकता रामकृष्ण मिशन सेवा प्रतिष्ठान की परिचारिकाओं (नर्सों) की बात ही लो। यहाँ की शिक्षा प्राप्त नर्सों के लिए सारे भारत का द्वार खुला है। सभी इन्हें चाहते हैं। क्यों कि ये सब रामकृष्ण-विवेकानन्द के भावादर्श में शिक्षित हैं। सेवा, कार्यदक्षता, व्यवहार—सभी मामलों में ये अनन्य हैं। दूसरों से श्रेष्ठ हैं। मठ-मिशन की भावधारा इस प्रकार परोक्ष रूप से प्रचारित और प्रसारित हो रही है। इसके लिए अलग से किसी भी साम्प्रदायिक आन्दोलन (सेक्टेरियन मूवमेन्ट) की आवश्यकता नहीं है।

देश : आपके इस विवेचन के आधार पर एक और बात मन में आ रही है। रामकृष्ण मिशन का छात्र—केवल इसी गौरव से गौरवान्वित जिस छात्र को वृहत् कार्य क्षेत्र में ले जाया गया, वह अपनी शिक्षा और समुन्नत चरित्र से अपने परिवेश को और भी सुन्दर बनायेगा, दूसरों को और भी अच्छा बनाने, चरित्रवान बनाने में मदद करेगा—ऐसी आशा कर सकता हूँ। कार्य क्षेत्र में जाकर क्या यह छात्र व्यक्तिकेन्द्रित, आत्मकेन्द्रित हो जायगा ?

रंगनाथानन्द : कुछ लड़के तो यह कार्य करते ही हैं। भविष्य में भी कोई-कोई करेगा। तब, सभी नहीं करेंगे, कर पायेंगे नहीं। क्योंकि यह काम व्यक्तिगत दक्षता के ऊपर निर्भर करता है। सभी कर सकते हैं या सभी करेंगे—ऐसी आशा करना भूल होगी। इस विषय में व्यक्तिविशेष की कार्यक्षमता की सीमा भी विवेचनीय है। फिर भी कहा जा सकता है कि, प्रत्यक्ष या परोक्ष, जिस रूप से हो स्वामी जी के 'बी एण्ड मेक'—स्वयं बनो और दूसरों को बनाओ—इस बीज मन्त्र को स्मरण रखना होगा। भारत के लोगों का स्वभावधर्म ही है आत्मकेन्द्रिकता। इसे छोड़कर भी, मैं कहूँगा कि इस काम में सब को आगे आने की चेष्टा करनी होगी। विशेषकर, मठ-मिशन के सभी अनुरागियों और

अनुगामियों के दैनिक कार्य का मूल केन्द्र यही मन्त्र होगा।

देश : हमारे स्वराज्य आन्दोलन, स्वाधीनता संग्राम में विवेकानन्द की वाणी ने युवकों को जिस प्रकार पथ-प्रदर्शन किया, प्रेरणा दी, आत्म-बलिदान का साहस प्रदान किया, उस प्रकार क्या आज के दिनों में भी वह वाणी उद्बुद्ध कर रही है ?

रंगनाथानन्द : स्वातंत्र्योत्तर भारत के लिए यह एक दुर्भाग्य है। डॉ० राधाकृष्णन ने इस सम्बन्ध में गम्भीर चिन्तन किया था। स्वाधीनता आन्दोलन के संग्राम-पर्व में स्वामीजी को जिस रूप में ग्रहण किया गया था, उस रूप में स्वाधीनता-पूर्व भारत के गठनमूलक स्वर्ण पर्व में हमलोगों ने स्वामीजी को याद नहीं किया। यह हमलोगों के लिए एक भीषण क्षति है। जो हो, ठीक इसी समय हमलोगों के देश की सरकार ने महसूस करना शुरू किया है—स्वामी विवेकानन्द की जरूरत है। राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनकी वाणी को स्मरण रखने की परम आवश्यकता है। भारत-सरकार ने स्वामीजी के जन्म-दिन को युवा-दिवस के रूप में मनाने की घोषणाकर इस सत्य की प्रतिष्ठा की है कि आज के दिनों में युवा-वर्ग के सामने स्वामीजी ही एकमात्र ध्रुवतारा हैं। इसे एक शुभ संकेत कह सकते हो। वस्तुतः आज का युवावर्ग प्रत्यक्षरूप से, निश्चित रूप से स्वामीजी की वाणी से एक प्राणवन्त, गतिशील, भेद-भावहीन, जात-पात से रहित, साम्प्रदायिकता से परे अवस्थित भारतवर्ष की प्राण-प्रतिमा का संधान पा सकता है। एक-दो वर्ष पहले बेलुड़ मठ में आयोजित युवा सम्मेलन में दस हजार युवक-युवतियों की उपस्थिति इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि युवावर्ग पर विवेकानन्द की वणी और साहित्य का कितना अधिक प्रभाव है।

इस युवावर्ग ने बेलुड़ मठ में एकत्र होकर स्वयं ही शपथ ली है—देश के लिए आत्मसमर्पण करना होगा। [illegible] में नहीं। बिल्कुल निःस्वार्थ रूप से। वह एक अभूतपूर्व सम्मेलन था। युवावर्ग की इस भावना ने, आत्मदान की स्वीकृति ने वयस्कों की आँखें खोल दी हैं। दरिद्रों, दुर्बलों के लिए युवकों की यह स्वच्छ और सुसम्बद्ध चिन्तन तथा कर्मशीलता की यह आकांक्षा पूरे देश में परिव्याप्त हो गयी है। रामकृष्ण मिशन के अन्यान्य केन्द्रों में भी इसकी लहर फैल गयी है।

इस प्रकार धीरे-धीरे, किन्तु दृढ़तापूर्वक स्वामीजी की वाणी और स्वामीजी के आदर्श युवावर्ग में फैल गये हैं। ये युवक धीरे-धीरे आगे आ रहे हैं। वे जानना चाहते हैं कि स्वामीजी की भावधारा के सहारे उनके लिए क्या करना उचित है ? किस प्रकार वे कार्य शुरू करेंगे। उनके क्या कर्त्तव्य हैं—आदि।

देश : तब तो यह कहूँगा कि स्वामी विवेकानन्द की वाणी फिर नये रूप में युवकों को प्रेरणा दे रही है, पथ-प्रदर्शन कर रही है। ठीक जिस प्रकार स्वाधीनता के पूर्व भारतवर्ष ने स्वामीजी को ग्रहण किया था।

रंगनाथानन्द : हाँ। आज अनेक तरुण-तरुणियों ने काम करना शुरू कर दिया है। विवेकानन्द भावधारा को ग्रहणकर गाँवों में, आदिवासियों के दुर्गम क्षेत्रों में अत्यन्त कमजोर वर्ग के लोगों में वे कार्य कर रहे हैं। नया भारत इन्हीं कार्यों के द्वारा जन्म ले रहा है। अभी हमलोग इसे आँखों से देख नहीं पायेंगे। लेकिन कार्य हो रहे हैं। गठित हो रहा है स्वामीजी के सपनों का भारत। फिर कहता हूँ, सबके ओझल रूप से, धीरे-धीरे यह सृजन पर्व हो रहा है। भोर के नवोदित सूर्य की भाँति एक दिन चारों दिशाओं को आलोकितकर इसकी ज्योति प्रकाशित होगी। ये कार्य व्यर्थ नहीं जायेंगे। व्यर्थ जाने को हैं नहीं।

देश : आपके इतने सुन्दर तर्कसम्मत विश्लेषण के बावजूद मन में एक द्वन्द्व है। वह है, मैं अपनी व्यक्तिगत खोज से देखता हूँ कि रामकृष्ण मठ-मिशन के विभिन्न धर्म और कर्ममूलक आयोजनों में जितने बड़े और प्रौढ़

लोग उपस्थित रहते हैं, उस तुलना में युवजन अत्यन्त नगण्य संख्या में उपस्थित होते हैं। इस स्थिति को देखकर लगता है, युवावर्ग, चाहे जिस कारण से हो, रामकृष्णा-विवेकानन्द भावादर्श से उद्बुद्ध नहीं हो पा रहा है। इस विषय में आपका क्या विचार है?

रंगनाथानन्द : ऐसा ठीक ही देखते हो। यह परिस्थिति पिछले कई वर्षों से उत्पन्न हुई है। इस युग के युवक-युवतियाँ एक अनायास प्राप्त स्वच्छन्दतापूर्ण जीवन-पथ पर चलना चाहते हैं। कष्ट कर के, युद्ध कर के, लड़ाई कर के कुछ पाने के वे इच्छुक नहीं हैं। यहाँ तक कि परीक्षा में पास करने के लिए सबसे सरल सहज मार्ग की खोज में वे डूबे हैं।

'ईजी वे' (आसान रास्ता), 'कम्फर्टेबुल लाइफ' (आरामदायक जीवन) ही अभी युवकों के सामने एकमात्र आकांक्षित वस्तु हो गये हैं। हमलोगों के देश की अर्थनीति, राजनीति, राष्ट्रनीति आदि के अनेक जटिल आक्रमणों से असंख्य युवाप्राण धीरे-धीरे क्लान्त हो गये हैं। फलतः श्रमरहित जीवन ही आज उनकी एकमात्र आकांक्षा हो गयी है। धर्म और दर्शन पर आधारित कोई भी रचनात्मक विवेचन सुनने से परीक्षा में काम आयगा, ऐसा युनिवर्सिटी-लेक्चर उन्हें अधिक आकर्षक लगता है। तब, यही तस्वीर अन्तिम बात नहीं है। एक दूसरी तस्वीर भी हमारी आँखों के सामने है। अभी इस मानसिकता में परिवर्तन होना शुरू हुआ है। अपनी जानकारी के आधार पर कहता हूँ कि तरुण-तरुणियों के दल के दल आ रहे हैं, अपार जिज्ञासा लेकर सामने आकर खड़े होते हैं। सीखना-समझना-जानना चाहते हैं। मैं जहाँ कहीं बोलने गया हूँ वहाँ कम से कम साठ तिशत युवकों की उपस्थिति देखी है।

देश : देश में सर्वत्र क्या अपने यही चित्र देखा है?

रंगनाथानन्द : नहीं, सब जगह नहीं। कहीं कम, कहीं अधिक। किन्तु मूल धारा अर्थात् उज्जीवित होने

कमोवेश युवकगण इसी भावादर्श के प्रति गम्भीर उत्सुकता प्रकट करते हैं। हमलोग भी कहीं-कहीं उनके निकट जाते हैं। युवक-युवती आते हैं या हमलोग जाते हैं—इस प्रकार एक सेतु का निर्माण होता है।

यह सही है कि "ईजी लाइफ' के प्रति आत्यन्तिक आग्रह है, बाहरी संसार के नाना इशारे, सांसारिक उत्तरदायित्वों से सामयिक मुक्ति का सुयोग आदि अनेक कारणों से युवकों को इस ओर आकृष्ट नहीं किया जा रहा है। किन्तु इन युवकों में जो जन्म से ही चिन्तन-चेतना से परिपूर्ण हैं, वे अपने आप आते हैं। उन्हें बुलाना नहीं पड़ता है। सारे संसार के परिप्रेक्ष्य में युवकों को इन दिनों दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक ओर हल्के मन-मिजाज एवं जीवन में अभ्यस्त तरुण-तरुणियाँ और दूसरी ओर गम्भीर मनन और आस्था में समर्पित-प्राण नये नक्षत्रों का एक वर्ग। जिनकी चित्तभूमि तैयार हो गयी है, उनके लिए कोई चिन्ता नहीं। बाकी लोगों के लिए हमलोगों को कार्य शुरू करना होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये बाकी लोग भी क्रमशः सचेतन हो उठेंगे। चिन्तन भावना से परिपूर्ण हो उठेंगे तथा अच्छे बुरे का विचार कर सही मार्ग की तलाश कर सकेंगे। यह सब होने में थोड़ा समय लगेगा। तथापि होगा ही।

देश : किन्तु महाराज, एक युवक परिपूर्णता या मच्युरिटी प्राप्त करते-करते ही यदि प्रौढ़ता को पहुँच जाय, तब कार्य कैसे होगा? एक उदाहरण देकर कहा जा सकता है कि देवता की पूजा सवेरे के फूल से होती है, ढलते दिन के फूल से नहीं। ठीक उसी तरह किशोरावस्था और यौवन का संधिकाल या उसके ठीक बाद का जीवन ही क्या महत्तर भावग्रहण करने और कार्य आरम्भ करने का उपयुक्त समय नहीं है?

रंगनाथानन्द : ठीक यही बात है। हमलोग भी सर्वतोभावेन इसी उपयुक्त समय को पकड़ने की चेष्टा

शरणागति या ईश्वर प्रणिधान

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

'शरणागति' धर्म जगत का एक अत्यन्त परिचित शब्द है। भगवान ने गीतोपदेश के अन्त में अर्जुन को सर्व धर्मों का त्याग कर उनकी शरण में जाने को कहा था। लेकिन जिस सरलता से इस शब्द का प्रयोग सामान्यतः किया जाता है, शरणागति की साधना और और सिद्धि उतनी आसान नहीं है।

शरणागति के स्वरूप को भली प्रकार हृदयंगम करने के लिए इसके तीन पक्षों को अलग-अलग समझना उचित होगा :

१. शरणागति—एक सिद्धावस्था
२. शरणागति—एक साधना
३. शरणागति—एक मनःस्थिति

शरणगति—एक सिद्धावस्था

भक्ति शास्त्र में शरणागति को ही जीवन का चरम उद्देश्य माना गया है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रूपी चार पुरुषार्थ के अतिरिक्त भगवत् शरणागति को पंचम पुरुषार्थ के रूप में स्वीकार कर मोक्ष रूपी परम पुरुषार्थ के भी ऊपर स्थान दिया गया है। भक्त मुक्ति भी नहीं चाहता, वह तो स्वयं की इच्छा को—चाहे वह मोक्षेच्छा ही क्यों न हो, प्रभु की इच्छा में विलीन कर देना चाहता है। इस प्रकार की साध्य रूपी शरणागति समग्र पुरुषार्थपरक साधना के अन्त में साधना के चरम उत्कर्ष के रूप में प्राप्त होती है। सागर के बीचो-बीच जहाज के मस्तूल पर बैठा पक्षी किनारे पर पहुंचने के लिए विभिन्न दिशाओं में उड़ान भर कर, जब किसी ओर भी किनारा नहीं पाता तब शरणागति कुछ इसी प्रकार की है। इस बात को अनेक महापुरुषों ने स्वीकार किया है। शरणागति के भाव का पूर्ण विकसित रूप एक गुलाम और उसके सूफी मालिक के वार्तालाप में सुन्दर रूप से प्रकट हुआ है। एक सूफी ने अपने नये गुलाम से उसका नाम पूछा। गुलाम ने उत्तर दिया, "जो आप रख दें।" "क्या काम कर सकता है ?" "जो आप करायें।" "क्या खायेगा ?" मालिकने पूछा। 'जो आप दे दें।" "क्या पहनेगा ?" "जो आप पहनायें।" "क्या चाहता है ?" 'जो आपकी मर्जी हो। बन्दे को अपनी राय से क्या सरोकार है ?" यही बात मीराबाई अपने एक भजन में गाती है। "जो पहरावे वही पहरूं, जो देवे सो खाऊं। जहां बैठावे वहीं बैठूं, बेचे तो बिक जाऊं।" अथवा विजयी राजा के सामने खड़े पराजित राजा की मनोदशा की कल्पना कीजिए जिसका समग्र भविष्य विजयी सम्राट की इच्छा पर निर्भर है। चाहे तो वह उसे मृत्यु दण्ड दे, आजीवन कारावास में डाल दे, अथवा मुक्त कर दे। स्वामी शिवानन्द जी ने अपने एक भाषण में इस बात को अत्यन्त सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है।" लक्ष्य भेद करने वाले एक तीर की तरह बनो। शत्रु के टुकड़े-टुकड़े करने की क्षमता वाले खड्ग की तरह बनो; पत्थर को चूर-चूर करने वाले हथौड़े की तरह होओ। यदि तीर लक्ष्यच्युत हो जावे तो वह शिकायत नहीं करता। यदि खड्ग योद्धा के हाथ में ही टूट जावे तो वह किसी को दोष नहीं देता। और यदि हथौड़ा चोट न कर पाये तो कुछ कहता नहीं। इसी तरह परमात्मा के हाथों में यंत्रवत् बनो। प्रभु के यंत्र के रूप में निर्मित होने में [illegible] आनन्द है, और अन्त में

कार्य समाप्ति पर अलग रख दिये जाने पर उतना ही आनन्द है।"

शरणागति — एक साधना

पूर्ण शरणागति की यह चरमावस्था आसानी से या एक दिन में प्राप्त नहीं होती। इसके लिए दीर्घकाल तक— यदि आवश्यक हुआ तो जन्म जन्मान्तर तक साधना करनी होती है। वस्तुतः पुरुषार्थ एवं समर्पण, साथ-साथ चलना चाहिए, एवं प्रत्येक साधक को समर्पण को अपनी साधना का एक अभिन्न अंग बना लेना चाहिए। भक्ति मार्ग में शरणागति का महत्वपूर्ण स्थान तो है ही, कर्म एवं कर्म-फल का भगवान् को समर्पण कर्मयोग का भी एक अनिवार्य अंग है। "ईश्वर प्रणिधान" के रूप में पातंजल योग-शास्त्र में भी इसका समावेश है। योग की पूर्ण तैयारी के रूप में महर्षि पातंजलि क्रिया योग का विधान करते हैं, जिसके तीन अंग हैं : तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर-प्रणिधान। यही नहीं, ईश्वर-प्रणिधान पांच नियमों में से एक है। ईश्वर-प्रणिधान से द्रुतगति से समाधि लाभ किया जा सकता है, यह भी योगशास्त्र में स्वीकार किया गया है। पातंजल योग सूत्र की टीका करते हुए व्यास देव ने ईश्वर प्रणिधान के तीन अर्थ बताये हैं : भक्ति विशेष, ईश्वर रूप परम गुरु के प्रति सर्व-कर्म-समर्पण अथवा कर्मफल-संन्यास। हृदय में ईश्वर की सत्ता का अनुभव कर आत्मनिवेदन पूर्वक उसी पर निश्चिन्त रहना भक्ति का स्वरूप है। समस्त कार्य हृदयस्थ ईश्वर के द्वारा मानो प्रेरित होकर कर रहा हूँ, ऐसा दिन-रात प्रतिक्षण अनुभव करना ईश्वरार्थ सर्व कर्मार्पण या ईश्वर प्रणिधान है। शास्त्रों में कहा गया है,

"कामतोऽकामतो वापि, यत् करोमि शुभाशुभम्।
तत्सर्वं त्वयि संन्यस्तं प्रयुक्तः करोम्यहम्॥

अर्थात् इच्छा से या अनिच्छा से जो भी कार्य कर रहा हूँ, उनका फलभूत सुख-दुःख आपको समर्पित करता हूँ।

उपर्युक्त श्लोक के विश्लेषण पर हम प्रत्येक कर्म के चार अंग पाते हैं : इच्छा, कर्त्ता, कर्म तथा फल। जीवन के सभी छोटे-बड़े कर्म या तो हम अपनी स्वयं की इच्छा से, अथवा किसी दूसरे द्वारा प्रेरित हो करते हैं। सर्व-प्रथम प्रत्येक कर्म की एक प्रेरणा होती है। इसके बाद आता है स्वयं का कर्त्तापन "मैं कर रहा हूँ।" का भाव। तीसरा घटक है कर्म स्वयं और चौथा है उसका फल। कर्म की प्रेरणा अथवा इच्छा एवं कर्त्तापन के भाव के बीच सूक्ष्म अन्तर होते हुए भी वे दोनों इतने अभिन्न रूप से विद्यमान रहते हैं कि कर्त्तापन एवं कर्म की प्रेरणा दोनों सामान्यतः एक ही मान लिये जाते हैं। वास्तविक शरणागति अपनी इच्छा एव कर्तापन के त्याग में ही निहित है। श्रीरामकृष्ण एक भजन गाया करते थे—

सभी तुम्हारी इच्छा है माँ,
तुम इच्छामयी तारा हो।
तुम्हारे कर्म तुम स्वयं करती हो,
पर लोग कहते हैं "मैं करता हूँ।"

— मैं यंत्र हूँ तुम यंत्री, मैं घर तुम गृहिणी हो,
मैं रथ हूँ, तुम रथी, चलता हूँ जैसा तुम चलाती हो।

प्रभु के हाथों यंत्र रूप हो जाना ही शरणागति की चरमावस्था है। श्रीरामकृष्ण को यह प्रत्यक्ष अनुभव होता था कि वे नहीं, स्वयं माँ जगदम्बा ही उनके माध्यम से कार्य कर रही हैं। स्वामी ब्रह्मानन्द जी कहा करते थे कि एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना, शिष्यों को स्वीकार करना आदि अपने सभी कार्य वे आदेश प्राप्त होने पर ही करते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि स्वयं की इच्छा का त्याग एवं प्रभु की इच्छा के अनुसार कार्य करना,— भले ही उसमें अहं का भाव बना रहे—शरणागति का लक्ष्य है। लेकिन इसकी प्राप्ति इतनी आसान नहीं है न ही इसकी साधना इतनी सीधी। सामान्यतः सर्वकर्म त्याग अथवा कर्म फल त्याग अधिक आसान होता है। अतः शरणागति की साधना को चार अंगों में विभिक्त किया जा सकता है:

१. स्वयं की इच्छा का त्याग
२. कर्तापन का त्याग
३. कर्म का त्याग
४. कर्म फल का त्याग

१. स्वयं की इच्छा का त्याग

हम किसी न किसी रूप में अपने दैनन्दिन जीवन में अपनी इच्छाओं का त्याग करने को बाध्य होते हैं। एक पुत्र को पिता की, पत्नी को पति की एवं एक कर्मचारी को मालिक की इच्छा के अनुसार कार्य करना होता है। सामाजिक शृंखला एवं सुव्यवस्था बनाये रखने के लिए अनेक नियमों का निर्माण किया गया है, जो व्यक्ति को उसकी वय, सामाजिक स्थिति एवं अवस्था के अनुसार कार्य करने का निर्देश प्रदान करते हैं। इन्हीं नियमों को वर्णाश्रम धर्म की संज्ञा दी जाती है। इन पारिवारिक एवं सामाजिक विधि-निषेधों का बिना समझे पालन करने के बदले समझ बूझ कर एवं प्रभु के आदेश मानकर पालन करने से हमारे दैनन्दिन कार्य ही साधना का रूप ले लेते हैं।

इन सामाजिक नियमों के अतिरिक्त कुछ शास्त्रीय नियम भी हैं। गीता, भागवतादि में कुछ सार्वभौमिक सिद्धान्त बताये गये हैं। उनका पालन करना भी शरणागति की साधना का अंग हो सकता है या बनाया जा सकता है। गुरु के आदेश को प्रभु का आदेश मानकर पालन करना तो उत्तम है ही। किसी संघ, विशेषकर धर्म संघ के प्रमुख के आदेश को भी इसी प्रकार भगवदादेश के रूप में स्वीकार करना चाहिए। धर्म संघों—संन्यासी संघों में इस प्रकार की आज्ञाकारिता साधना का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है।

प्रभु का प्रत्यक्ष आदेश प्राप्त करना एक अत्यन्त दुर्लभ वस्तु है तथा बिरले शुद्ध सत्त्व साधकों को ही इसका सौभाग्य प्राप्त होता है। कुछ उच्चकोटि के साधक इसकी साधना करते सुने गये हैं। उदाहरण के लिए श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग संन्यासी शिष्य स्वामी अद्भुतानन्द जी [लाटू महाराज] को जब कोई विशेष कार्य करना होता तो वे प्रभु से प्रार्थना करते थे एवं उसके आदेश के लिए धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करते थे। कभी-कभी स्पष्ट रूप से प्रभु की इच्छा जानने में उन्हें एक वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। ऐसे साधकों को भगवदादेश स्वप्न में अथवा कभी-कभी अतीन्द्रिय अवस्था में प्रभु के दर्शन द्वारा स्पष्ट रूप में होते हैं। इस प्रकार के अटूट धैर्य की कमी होने के कारण यह साधना अधिकांश प्रारम्भिक साधकों के लिए उपयुक्त नहीं है। फिर भी किसी भी कार्य को करने के पूर्व अथवा किसी इच्छा अथवा संकल्प के क्रियान्वयन के पूर्व प्रभु से प्रार्थना करना, एवं उनसे मार्गदर्शन की याचना करना एक उपयोगी साधना है, जिसका अभ्यास सभी कर सकते हैं। अगर सम्भव हो तो इच्छा के क्रियान्वयन को धैर्यपूर्वक कुछ समय के लिए स्थगित कर शरणागति के भाव में बना रहना बहुत अच्छा है।

स्वयं की इच्छा के समर्पण का श्रेष्ठतम उदाहरण हम श्रीरामकृष्ण के गृही शिष्य गिरीशचन्द्र घोष के जीवन में देख पाते हैं। श्रीरामकृष्ण को "बकलमा" या आम-मुख्तारी देने अथवा अपना सारा भार सौंप देने के बाद एक दिन बातचीत के दौरान गिरीश के मुँह से निकल पड़ा कि अमुक कार्य वे कर देंगे। तत्काल श्रीरामकृष्ण ने उन्हें रोकते हुए कहा कि चूँकि तुमने अपना समस्त भार मुझ पर सौंपा है, अतः इस प्रकार कहना कि "मैं अमुक कार्य करूँगा" उचित नहीं है। अतः सदा ऐसा कहो 'यदि प्रभु की इच्छा हुई तो अमुक कार्य करूँगा।" उस दिन से प्रतिदिन गिरीश को अपने सभी कर्मों के पूर्व प्रभु से प्रार्थना कर उनसे आदेश प्राप्त करने एवं स्वयं की इच्छा का त्याग करने का प्रयत्न करना पड़ता था। इसके फलस्वरूप वे एक ऐसी स्थिति में पहुँचे थे कि वे, बिना प्रभु की आज्ञा के एक गिलास पानी भी नहीं पी पाते थे, भले ही गर्मी एवं प्यास के कारण उनका गला ही क्यों न सूख रहा हो।

कर्तापन का त्याग

स्वयं के कर्तृत्व बोध को विभिन्न प्रकार से त्यागा जा सकता है।

१. ईश्वर ही सब प्राणियों के हृदय में विराजमान होकर माया द्वारा उन्हें चला रहे हैं।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

सर्वप्रथम अपने हृदय में ईश्वर का ध्यान कर यह भाव दृढ़ कर लेना चाहिए कि वे मेरे हृदय में विराजित हैं। तदनन्तर समस्त कर्म करते समय इस भाव को बनाये रखने का प्रयत्न करना चाहिए कि वे ही हृदय में बैठकर मुझे चला रहे हैं।

२. सर्वप्रथम ईश्वर के प्रशान्त चित्त की भावना कर उसमें अपने चित्त को स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिये। अर्थात् मैं ही ईश्वर हूँ, एवं वीतराग भाव युक्त हूँ, ऐसी भावना करके प्रशान्त चित्तता का अनुभव कर सभी अपरिहार्य चेष्टाएँ मानो उसके द्वारा हो रही हैं, ऐसा सोचना चाहिए।

३. मैं शुद्ध, बुद्ध, मुक्त अकर्त्ता, चैतन्य आत्मा हूँ तथा समस्त क्रिया कलाप "गुणाः गुणेषु वर्तन्ते।" इस भगवदादेश के अनुसार तीन गुणों के द्वारा हो रहे हैं, मेरे द्वारा नहीं, यह भावना भी की जा सकती है।

सर्व कर्मत्याग कर्म-त्याग की साधना अहंकार अथवा इच्छात्याग की साधना से कहीं सरल है। सभी छोटे-बड़े कर्मों के करने के पूर्व तथा कर्म की समाप्ति पर उसे मन ही मन प्रभु को समर्पित करना चाहिए। शुरुआत में प्रतिदिन सुबह यह संकल्प करें कि आज दिन भर किये जाने वाले समस्त कर्म प्रभु को समर्पित करता हूँ। तथा रात्रि को शयन से पूर्व पुनः इस संकल्प को दुहराएँ कि वे दिन भर किये गये सारे कर्म प्रभु को समर्पित हुए। इसका अभ्यास हो जाने पर छोटे-छोटे कार्यों में—यथा कपड़े धोना, खाना बनाना, व्यावसायिक कार्य करना आदि के प्रारम्भ व अन्त में प्रभु को स्मरण कर कर्म को उन्हें समर्पित करें। प्रत्येक कर्म छोटे छोटे अनेक कर्मों की समष्टि होता है। धीरे-धीरे उन सभी कर्मों के प्रारम्भ एवं अन्त में प्रभु का स्मरण एवं उन कर्मों को प्रभु को समपर्ण किया जा सकता है।

सर्व कर्म समर्पण की यह मानसिक प्रक्रिया जितनी आन्तरिकता एवं ईमानदारी से की जायेगी उतनी ही अधिक प्रभावशाली एवं फलदायक होगी। यह सदा याद रखें कि बिना भगवत्स्मरण के समर्पण नहीं होता। अतः जितना अधिक ईश्वर का स्मरण किया जायेगा उतना ही अधिक समर्पण का भाव हमारे जीवन में उतरेगा।

इस आन्तरिकता को बनाये रखना ही साधक की सबसे बड़ी समस्या है। हरेक साधना चाहे वह ध्यान की हो या शरणागति की या और कोई, सभी, मनोयोग के अभाव में यंत्रवत् हो जाती हैं। शरणागति भी "ईश्वरार्पणमस्तु," "कृष्णार्पणमस्तु" वाक्योच्चारण की क्रिया मात्र बनकर न रह जाये इसका ध्यान रखना चाहिए। अगर यह केवल मुखस्थ एवं भाव रहित होकर रह जाये, तो भी कुछ न कुछ लाभ तो होता ही है। भाव-भक्ति पूर्वक समर्पित फल, पुष्प, पत्र, यहाँ तक कि जल भी भगवान सानन्द स्वीकार करते हैं। "भावग्राही जनार्दनः।" यदि साधक में समर्पण का भाव ठीक ठीक विद्यमान हो और उसे यह विश्वास हो कि उसके समर्पण को प्रभु स्वीकार करते हैं; तो उसके क्रिया-कलाप में परिवर्तन आयेगा। हम कभी कोई बुरी वस्तु अपने प्रियतम को नहीं देते। अतः कोई बुरा कार्य या विचार प्रभु को कैसे दे सकते हैं? यह विचार हमारे जीवन को परिवर्तित कर देगा।

कर्मफल का त्याग यदि सर्व कर्म त्याग सम्भव न हो तो भवगद्गीता के आदेशानुसार साधक को कर्मफल त्याग का प्रयत्न करना चाहिए। (भ० गी० द्वादशाध्याय)। जिस प्रकार इच्छा एवं अहंकार का त्याग कर्तापन के त्याग की साधना है, उसी तरह कर्म फल का त्याग भोक्तापन के त्याग की साधना एवं कर्मयोग का एक अनिवार्य अंग है। इसका गहरा मनोवैज्ञानिक अर्थ है। अपने पूर्व कर्मों एवं वर्तमान कर्मों के शुभाशुभ प्रिय अप्रिय फलों, एवं परिणामों को निर्विकार भाव से बिना व्यग्र हुए स्वीकार करना। किन्तु लोग पुण्य का फल, सुख तो चाहते हैं पर पाप कर्म से विरत नहीं होते—

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः ।
न पापफलमिच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः ॥

अतः कर्मफल के त्याग का अर्थ है, पुण्य एवं शुभ कर्म का अनुष्ठान करते हुए भी उसके फल की आकांक्षा न रखना, उस ओर दृष्टि न बनाये रखना। साधक प्रत्येक कर्म की समाप्ति पर भगवत्स्मरण कर प्रयत्न पूर्वक कर्म फल समर्पण कर सकता है। आनुष्ठानिक पूजा में तो पूजा कार्य के फल के प्रतीक के रूप किसी सच्चे फल की ही अग्नि में आहुति प्रदान कर दी जाती है। यह कार्य मानसिक रूप से तो सभी कर्मों के बाद किया जा सकता है। कर्म के बाद भगवत् स्मरण करते हुए "इस कर्म का फल योग अथवा निवृति की ओर ले जावे, संसार बन्धन से मुक्त करे," इस प्रकार का संकल्प करने से कर्म फल का अर्पण प्रभु में होता है। भोक्तापन अथवा कर्मफल के त्याग का भी उत्कृष्ट उदाहरण गिरीश चन्द्र घोष के जीवन में पाया जाता है। श्रीरामकृष्ण के तिरोधान के बाद उन्हें पुत्र-वियोग, पत्नी-वियोग आदि अनेक निदारुण कष्ट भोगने पड़े थे। अपने पूर्व कर्मों के इन कष्टप्रद फलों को उन्होंने धैर्य-पूर्वक यह सोचकर स्वीकारा था कि यही प्रभु की इच्छा है। सुख दुःख, जो भोग प्रभु देंगे उसे ही मुझे स्वीकार करना होगा।

शरणागति एवं पुरुषार्थ सभी साधनाओं में कुछ कुछ खतरे रहते हैं। शरणागति की साधना का सबसे बड़ा खतरा है निष्क्रियता, अकर्मण्यता। मैंने अपनी इच्छा, संकल्प एवं कर्म प्रभु को समर्पित कर दिये हैं, ऐसा सोचकर साधक निष्क्रिय हो घोर तमोगुण में पतित हो सकता है। जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा चुका है वास्तविक शरणागति घोर कर्मठता के, कठोर पुरुषार्थ के परिणाम स्वरूप प्राप्त होती है। वह उच्चतम सत्त्व गुण की अवस्था है जिसकी प्राप्ति तमोगुण का रजोगुण द्वारा त्याग करने पर ही हो सकती है। पुरुषार्थ एवं शरणागति का सन्तुलन बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक है। अतः साधक को सावधान रहना चाहिए कि वह शरणागति की आड़ में किसी भी प्रकार के अन्याय, प्रमाद अथवा मन के छल को प्रश्रय न दे। यह सदा याद रखना चाहिए कि भगवत् विस्मरण होने पर शरणागति सम्भव नहीं है। ईश्वर विस्मृति के साथ किया गया कार्य अहंकार जन्य एवं बन्धन का कारण ही होता है।

सभी साधनाओं की तरह इस साधना में भी साधक की निष्ठा एवं ईमानदारी ही इन खतरों से बचाकर सिद्धि प्रदान कर सकती है।

शरणागति—एक मनःस्थिति शरणागति के भाव को एक स्वस्थ तनावहीन मनःस्थिति के रूप में ही लिया जा सकता है। अंह-प्रसित संकल्प एवं तीव्र फलासक्ति अधिकांश मानसिक तनाव एवं अशान्ति का कारण होते हैं। प्रभु की इच्छा से जो होगा, होगा। वे जैसा करायेंगे वैसा ही कर्म करूंगा, इस प्रकार का भाव अहंकार एवं भविष्य की चिन्ता से छुटकारा दिलाकर व्यक्ति को काफी शान्ति प्रदान करता है। आधुनिक मनोविज्ञान की भाषा में शरणागति "वर्तमान में ही जीने" की कला का ही दूसरा नाम है। ईश्वर प्रणिधान अथवा भगवदिच्छा बिना दुविधा के स्वीकार करना एक मानसिक दृष्टिकोण विशेष है जो साधक के लिए चाहे वह किसी भी साधना पद्धति का अवलम्बन क्यों न करता हो, अत्यन्त उपयोगी है आध्यात्मिक साधना का दीर्घ पथ अनेक उतार चढ़ावों से होकर गुजरता है। अगर इसकी सफलताओं एवं असफलताओं को अविचलित भाव से स्वीकार करना साधक न सीखे तो वह मार्ग मे ही निराश हो सकता है।

यात्रा-वर्णन

'बोल बम' की यात्रा

—मुसाफिर

'विवेक शिखा' के जनवरी ८७ अंक में प्रकाशित 'शिवावतार स्वामी विवेकानन्द' नामक लेख पढ़कर पाठकों पर क्या प्रतिक्रिया हुई होगी, मालूम नहीं। संभवतः कई श्रद्धालुओं की स्वामीजी के प्रति श्रद्धा-भक्ति में अभिवृद्धि हुई होगी। किन्तु मुसाफिर पर इसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि शिवजी के प्रति श्रद्धा का उदय हो गया! एक आधुनिक मन के लिए शिकागो धर्ममहासभा में उद्घोष करने वाले, प्रतिभासम्पन्न, आकर्षक व्यक्तित्वधारी स्वामी विवेकानन्द के प्रति आकृष्ट होना स्वाभाविक है, किन्तु जटाजूटधारी, भस्म रमाये, सर्प की माला पहने, त्रिशूलधारी, मृगचर्म पहने महादेव जी की भक्ति करना उतना सहज नहीं है। तब एक शिवलिंग की पूजा का माहात्म्य भला वह कैसे स्वीकार करे? जब सुनता था कि प्रतिवर्ष श्रावण-मास में लाखों श्रद्धालु नर-नारी देवघर स्थित बाबा वैद्यनाथ के शिवलिंग पर जल चढ़ाने, वहाँ से १७ कि० मी० दूर सुलतानगंज से उत्तरवाहिनी जाह्नवी का जल कांवरों में भरकर, पैदल चलकर आते हैं, तो आश्चर्य होता था। सोचता था कि अंध-श्रद्धालुओं इस की देश में कमी नहीं। किन्तु अब प्रतीत हुआ कि यह जादू उन्हीं शिवाजी का है जो स्वामी विवेकानन्द के आराध्य थे तथा जिनकी सत्ता उन्होंने पायी थी। अतः बाबा वैद्यनाथ के दर्शन की अभिलाषा तीव्र हुई, उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगा और भगवान ने कृपा कर यह अवसर प्रदान भी कर दिया। जुलाई में कार्यवश देवघर जाना हुआ। मन ही मन सोचा—'एक पंथ दो काज'—अर्थात्, कार्य भी होगा और बाबा के दर्शन भी होंगे, और वह भी श्रावण मास में ही, जिसकी विशेष महिमा है।' यही सोचकर १९ [illegible] पहुँचा। पहुँचते ही वहाँ के एक मित्र से बाबा के दर्शन की अभिलाषा प्रकट की। सुनते ही वे बोल उठे, "दिमाग खराब हो गया है क्या? श्रावण-मास में कभी बाबा के दर्शन हेतु आना चाहिए? जो लोग इतनी दूर से कांवर में जल भरकर आते हैं, वे ही दर्शन नहीं पाते, मंदिर के अहाते में जल ढालकर चले जाते हैं। अच्छे-अच्छे हृष्ट-पुष्ट लोग भी इस धक्कम्-धक्के में बेहोश हो जाते हैं, इतना सँकरा-छोटा सा मन्दिर है। तुम्हें किसी अन्य समय में आना होगा।" उनकी बातों को सुनकर मैं भौंचक्का खड़ा रह गया। इतनी दूर आकर भी श्रावण-मास में बाबा का दर्शन नहीं होगा? कितने दुर्भाग्य की बात? बाद में कब इस ओर आना हो—कौन जानता है? अतः मैंने फिर से अपने मित्र से अनुरोध किया, "क्यों न एक बार मन्दिर में जाकर भाग्य आजमा कर देखा जाय," अन्य उपस्थित लोगों ने सलाह दी कि यदि चान्स (Chance) ही लेना चाहते हैं, तो अपराह्न में दो बजे के बाद ले सकते हैं, उस समय भीड़ कुछ कम रहती है। भाग्य में लिखा होगा तो दर्शन हो जायगा। इस सलाह को मानकर मैंने दोनों मित्रों (पटना तथा देवघर वाले) के साथ पूर्वाह्न का समय देवघर के अन्य दर्शनीय स्थानों—कुण्डेश्वरी मन्दिर, बालानन्द आश्रम का नौलखा युगल मन्दिर आदि को देखने में व्यतीत किया।

लगभग दो बजे हम तीनों बाबा वैद्यनाथ के मन्दिर की ओर रवाना हुए। मन्दिर में पहुँचने के पहले ही दूर से देखा—असंख्य केसरिया वस्त्र-धारी नर-नारी कंधों पर कांवर लिए, 'बोलबम' का नारा लगाते हुए मंदिर की ओर अग्रसर हो रहे हैं। सुना कि इनमें कुछ लोग [illegible]

सीधे यहाँ आकर बाबा पर जल चढ़ाते हैं। बीच में कहीं भी रुकते नहीं है। इन्हें 'डाक-बम' कहते हैं। कितने ही लोगों के पैरों में छाले पड़ जाते हैं, पैर लहुलुहान हो जाते हैं, थककर वे चूर हो जाते हैं, फिर भी उनके बढ़ते कदम रुकते नहीं, बोल-बम' का सतत नारा उनमें जोश भरता ही रहता है। धन्य हैं ये श्रद्धालु, साहसी भक्तगण! श्रद्धा से मैं नतमस्तक हो गया। मंदिर के अहाते में पहुँचने पर अद्भुत दृश्य उपस्थित हो गया—आगे-पीछे, बायें-दायें, चारों ओर केवल केसरिया रंग ही दीख रहा था। असंख्य केसरिया वस्त्रधारी जनसमूह के कारण अहाते में खड़े रहने की भी जगह नहीं थी। ऊपर से झिरझिर वृष्टि हो रही थी और नीचे कीचड़ का मानो समुद्र था। उसी कीचड़ पर कुछ श्रद्धालु भक्त मंदिर के सामने लोट-पोट होकर प्रणाम कर रहे थे। 'बोल-बम' गगन-भेदी नारों से वातावरण गूँज रहा था। मानो 'बोल-बम' की महातरंग में सब बहे जा रहे थे। किसकी सामर्थ्य जो इस परिवेश में अभिभूत हुएबिना रह जाय? चित्त गदगद हो गया। मंदिर में प्रवेश करने के लिए बहुत लम्बी कतार थी, उसी में जाकर मैं खड़ा हो गया। इस भीड़ को देखकर दोनों मित्रों का साहस जाता रहा था। अतः वे दूर ही खड़े रहे। उनलोगों की सहायता से गंगाजल का एक छोटा सा घड़ा मन्दिर से ही ले लिया था। कतार में खड़े होकर मैंने कातर भाव से महादेव जी से प्रार्थना की—'ये सभी कष्टपूर्वक इतनी दूर से काँवर में गंगाजल भरकर उतनी श्रद्धा-भक्ति से आये हैं, किन्तु मुझ में इनकी श्रद्धा-भक्ति का शतांश भी नहीं, फिर भी यह सामान्य पूजा ग्रहण करना।" किन्तु महादेवजी को शायद यह प्रार्थना स्वीकार नहीं हुई। अतिकष्टपूर्वक उतनी भीड़ तथा धक्कम-धक्के में घड़े को बचाकर मन्दिर के गर्भगृह तक तो ले गया, किन्तु जल चढ़ाने के पहले ही ऐसा धक्का लगा कि सब जल गिर गया, मात्र घड़ा ही, बिल्व-पत्र तथा पुष्पों से आच्छादित शिवलिंग पर चढ़ा सका। शिवलिंग का स्पर्श भी न कर पाया था कि भीड़ के [illegible] पहले कई घड़ों का जल सिर पर गिरा, इससे लगा कि शिवलिंग पर जल चढ़ा सकने वालों की संख्या कम ही है, अधिकांश लोग एक दूसरों के सिर पर ही जल चढ़ा रहे हैं। खैर, किसी प्रकार बाहर निकला। मेरी हालत को देखकर बाहर खड़े मित्र आश्चर्य चकित रह गये क्योंकि मेरे सभी वस्त्र भींग चुके थे। फिर भी सही-सलामत देखकर वे खुश हुए क्योंकि हाथ में कुछ खरोंच के अलावा मुझे विशेष क्षति नहीं हुई थी, जबकि अन्य लोगों में किसी की नाक फूट गयी थी तो किसी को सिर पर चोट आयी थी।

अब तक बाहर धूप निकल आयी थी। मंदिर के सामने इसी धूप में खड़े-खड़े स्तोत्रादि पाठ करने के बाद मंदिर का गौर से दर्शन करने लगा। मुख्य मन्दिर पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा हुआ था—'रावणेश्वर वैद्यनाथ'। इस ज्योतिर्लिंग के नाम के पीछे एक रोचक कहानी सुनने को मिली। एकबार रावण ने कैलाश में जाकर तपस्या कर शिवजी को प्रसन्न किया तथा उनसे वर प्राप्त कर लिया कि वे लंका में निवास करेंगे। देवता इससे घबड़ाये। अतः शिवजी ने एक शर्त लगाते हुए कहा—'लंकेश, मेरे द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से इस कामना लिंग को ले जाकर लंका में स्थापित कर सकते हो, परन्तु यह ध्यान रहे कि यदि इसे रास्ते में कहीं रख दिया तो वह वहीं स्थिर हो जायगा, फिर उठेगा नहीं।" देवताओं ने ऐसी चाल चली कि शिवलिंग को ले जाते समय रास्ते में रावण को जोर से लघुशंका लगी। विष्णु भगवान वृद्ध ब्राह्मण का वेश धारण कर वहाँ पहुँचे तो रावण ने शिवलिंग को उनके हाथ में थमा दिया और लघुशंका करने लगा। (जहाँ ऐसी घटना घटी वह हरिला जोड़ी के नाम से हरिहर-मिलन के लिए प्रसिद्ध है।) ब्राह्मणवेशी विष्णु भगवान ने चिताभूमि वैद्यनाथपुरी में इस शिवलिंग को स्थापित कर दिया। रावण इधर सात दिनों तक लघुशंका करता ही रहा। बाद में उसे आकाशवाणी से सारी बातें मालूम हुईं। अब वह शिवलिंग तक जाना चाहता था। इसके [illegible] पवित्र होने के लिए जल की आ[illegible]कता

हुई। जब कहीं जल नजर नहीं आया तो उसने क्रोधित होकर एक घूँसा जमीन पर मारा। जमीन फोड़ कर पाताल से जल की धारा निकल पड़ी। उसी में उसने स्नान किया। (यह जलाशय 'शिवगंगा' के नाम से विख्यात है तथा मंदिर के पीछे है।' शिवलिंग को उठाकर जब ले जाने में समर्थ नहीं हुआ तब रावण आराधना में पुन. प्रवृत हुआ। इस हेतु एक कुआँ खोद-कर उसमें सभी तीर्थों से गगाजल लाकर संचित किया। (यह कुआँ 'चन्द्रकूप' के नाम से मंदिर के प्रांगण में अवस्थित है।) रावण द्वारा इस प्रकार स्थापित होने के कारण उसका नाम 'रावणेश्वर' हुआ। यह तो ठीक, किन्तु 'वैद्यनाथ' नाम कैसे पड़ा? पूछने पर इसके पीछे भी एक मजेदार कहानी सुनने को मिली। बैजू नाम का एक भील इस शिवलिंग की पूजा करता था। उसकी पूजा पद्धति अत्यन्त ही निराली थी। प्रतिदिन शाम को गाय चराकर लौटने के बाद ब्राह्मणों के इस शिवलिंग पर डण्डा जमाने के बाद ही भोजन करता था। एक दिन शाम को एक गाय खो जाने से लौटने में बहुत देर हो गयी और वह डण्डा जमाना भूल गया। भोजन करना प्रारम्भ ही किया था कि उसे यह बात याद आयी। तुरन्त दौड़-कर शिवलिंग के पास जाकर डण्डा मारने लगा। शिव-जी उसकी निष्ठा से प्रसन्न हो गये तथा उसकी इच्छा-नुसार यह वर प्रदान किया कि यह शिवलिंग उसी के नाम से विख्यात होगा। इसीलिए इसका नाम 'बैजूनाथ' या 'बैजनाथ' या 'वैद्यनाथ' हुआ। बैजू का समाधि-मंदिर, मुख्य मंदिर के पश्चिमी भाग में बाजार के पास देखने को मिला।

'रावणेश्वर वैद्यनाथ' के मुख्य मंदिर के अहाते में अन्य २२ मंदिर हैं जिनमें सबसे महत्वपूर्ण है—मुख्य मंदिर के ठीक सामने अवस्थित पार्वती मंदिर जो गठबन्धन द्वारा मुख्य मंदिर से मिला हुआ है। पार्वती मंदिर में जय दुर्गा एवं त्रिपुरा सुन्दरी की सुन्दर मूर्तियाँ हैं। यह ५१ शक्तिपीठों में से एक है। शक्तिपीठों के बारे में प्रचलित किंवदन्ती सर्व-विदित है। एकबार सती के पिता दक्ष ने अपने यहाँ एक यज्ञ का आयोजन किया जिसमें शिवजी को आमं-त्रित नहीं किया। सती के हृदय में मातृसदन जाने की लालसा जगी और हठपूर्वक शिवजी से अनुमति ले यज्ञ-मंडप गयीं, किन्तु वहाँ शिवजी का स्थान न देखकर अपने पिता दक्ष से इसका कारण पूछा। उत्तर में जब दक्ष ने शिवजी की अनेकानेक निन्दा की तब सती क्षुब्ध होकर चिता में कूद पड़ी। शिवजी ने यह संवाद सुनकर क्रोधित होकर उग्रमूर्ति बीरभद्र को दक्षयज्ञ विनाश का आदेश दिया तथा बाद में ज्योतिर्मय सती शरीर को अपने स्कन्ध पर लेकर भूमण्डल पर विचरण करना प्रारंभ किया। उसी समय बलवान तारकासुर से भयभीत होकर इन्द्रादि देव भगवान विष्णु के पास, गये और उनसे सती के शरीर की गति के लिए कोई उपाय करने का अनुरोध किया ताकि शिवजी देवकार्य में संलग्न हों। विष्णु ने हर-स्कन्ध स्थित सती की देह को सुदर्शन चक्र द्वारा खण्ड-खण्ड कर दिया। सती के अंग जहाँ-जहाँ गिरे वहीं शक्ति पीठ बन गया। यहाँ सती का हृदय गिरा था, अतः इस धाम को 'हार्दपीठ बैद्यनाथ' भी कहते हैं। पृथ्वी में यह एक ही ऐसा धाम है जहाँ शक्ति पीठ तथा ज्योतिर्लिंग एक साथ हैं।

कपड़े भींगे हुए थे, अतः उस दिन केवल पार्वती मंदिर का दर्शन कर अपने मित्र के साथ मैं लौट गया। पटना वाले मित्र ने इसी बीच पटना की राह पकड़ ली थी। दूसरे दिन सोमवार था—बाबा का विशेष दिवस। अतएव, अत्यधिक भीड़ का होना स्वाभाविक ही था। मंदिर के भीतर जाने का कोई सवाल ही नहीं था। शाम को वहाँ जाकर अन्य २१ मंदिरों का परिदर्शन किया—जगत्जननी, गणेश, चतुर्मुख ब्रह्मा, संध्या (कामाख्या), काल भैरव, हनुमान, मनसा, सरस्वती, सूर्य, माँ बगला, राम-लक्ष्मण-जानकी, गंगा-जाह्नवी, आनन्द भैरव, गौरी शंकर, नर्मदेश्वर महादेव, तारा, काली, अन्नपूर्णा, लक्ष्मी-नारायण, नीलकंठ तथा नन्दी बैल बसहा। काल भैरव की मूर्ति भगवान बुद्ध की मूर्ति के सदृश ही लगी।

जगह-जगह पर [illegible]

सजाये गये बिल्वपत्रों की प्रदर्शनी भी देखने को मिली। सुना कि श्रावण मास में तीर्थ पुरोहित-पाण्डे तीन-चार दलों में विभक्त होकर दूर-दूर पहाड़-जंगलों की खाक छानते हैं और संक्रान्ति तथा प्रत्येक श्रावणी सोमवार को वे नुकीले निर्दोष सुन्दर बिल्वपत्रों को रजत-थाल पर सजाकर आपसी प्रतिस्पर्धा करते हैं। जिस दल की जीत होती है, उसे पण्डा-समाज एवं बिल्वपत्र दर्शनार्थियों की ओर से प्रशंसा की बौछारें मिलती है।

उसी रात को, रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ के शिक्षक श्री दुर्गाचरण झा 'दुर्गेश' (जो वैद्यनाथ निर्देशिका के संकलक भी हैं) से बाबा बैद्यनाथ मंदिर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के संबंध में बातचीत हुई। विद्वानों में इस मंदिर की प्राचीनता को लेकर अनेक मतभेद हैं। जन-श्रुति है कि इस मंदिर को विष्णु भगवान ने देव शिल्पी विश्वकर्मा द्वारा बनवाया। मंदिर में पाये गये एक शिलालेख में लिखा है कि पूरण राजा ने १५१७ शाके में (अर्थात् ३८३ वर्षों पूर्व) इस मंदिर का निर्माण करवाया। एक और शिलालेख के अनुसार मध्य खण्ड में प्रवेश द्वार पर गिद्धौर नरेश रावणेश्वर प्रसाद सिंह ने पीतल के मजबूत पाट लगवाकर यह दावा उल्लेखित किया—"मदीय वंश निर्मितेऽत्र बैद्यनाथ मंदिरे···।" कुछ विद्वान इस मंदिर की भव्यता, विशालता तथा शिलाओं की प्राचीनता को देखते हुए गिद्धौर राजवंश वालों का दावा अस्वीकार करते हैं। हो सकता है महाराजा पूरण ने केवल मध्य खण्ड एवं धरना स्थान को बनवाया हो, बाकी का हिस्सा और भी प्राचीन हो। इस सन्दर्भ में 'दुर्गेश' जी ने चन्द्रकान्त मणि का उल्लेख किया। मंदिर के भीतरी प्रकोष्ठ में शिखर के नीचे अवस्थित इस मणि का पता सन् १९६२ में लगा जब शिवजी के ऊपर का चन्दवा खोलकर सर्चलाइट द्वारा देखा गया। चतुर्पार्श्व के आकार में अष्टदल कमल के बीच अवस्थित इस लाल लघुखण्ड से कहा जाता है कि प्रत्येक मिनट पर अति शीतल जल की एक बूंद ठीक बाबा के मस्तक पर गिरती है। 'दुर्गेश' जी का मानना है कि मंदिर का निर्माण रावण ने ही करवाया होगा। इसकी पुष्टि के लिए उन्होंने एक श्लोक उद्धृत किया जो उन्होंने कलकत्ता की नेशनल लाइब्रेरी में, रावण द्वारा लिखित एक पुस्तक में दैववश पाया था—

शिखरेऽष्ट दल जातं चन्द्रकान्त मणिप्रभम्।
जलं पतति पूजार्थं रावणेन विनिर्मितम्॥

उनकी बात तर्क संगत थी, क्योंकि मंदिर में पाये गये किसी शिलालेख में या किसी पुस्तक में इस मणि का उल्लेख नहीं है। परन्तु मन तो कुतर्क करना नहीं त्रेतायुग में लंका का राजा था और श्री राम के साथ युद्ध में मारा गया था? ठाकुर प्रसाद के पंचांग के अनुसार त्रेतायुग की आयु १२,९६,००० वर्ष तथा द्वापर की आयु ८,६४,००० वर्षों की है। कलियुग के अभी ५,०८० वर्ष बीते हैं, अतः इसकी स्थापना २१,६५,००० वर्ष पूर्व हुई होगी। क्या यह संभव है? यही सब सोचते-सोचते सिर चकराने लगा। फिर श्रीरामकृष्ण की बात याद हो आयी—"तुम आम खाने आये हो, आम का आनन्द लो, पेड़, पत्ते, डालियाँ आदि गिनने में समय क्यों गँवाते हो?" किसने मंदिर बनवाया, किसने कब शिवलिंग की स्थापना की, इन सब तथ्यों की छान-बीन करने में वृथा शक्ति क्षय करने का क्या प्रयोजन? आँखों के सामने देख रहा हूँ, लाखों नर-नारी, आबाल-वृद्ध, अपनी श्रद्धा-भक्ति इस स्थान पर उड़ेल रहे हैं, किस प्रकार बाबा वैद्यनाथ की यह भावभूमि सबको एक रंग में रँगकर, एक रस में सींचकर, बोल-बम' की महातरंग में बहाये जा रही है। इस महातरंग में डुबकी लगाना ही तो श्रेयस्कर है।

अतः बाबा के दर्शन के लिए मन फिर छटपटा उठा। दूसरे दिन मंगलवार को मेरा देवघर का कार्य समाप्त हो गया, सोचा बुधवार को लौटने के पहले फिर से एकबार बाबा के दर्शन का प्रयत्न कर लूँ। रविवार को बाबा का स्पर्श नहीं कर पाया था, जल भी नहीं चढ़ा पाया था। इसमें भी भगवान की इच्छा रही होगी क्योंकि बाद में किसी पुस्तक में पढ़ा कि उपवास किये बिना इस शिवलिंग का स्पर्श या पूजन नहीं करना चाहिए, कारण यहाँ शिवजी त्यागी योगेश्वर के रूप में स्थित हैं। अतः बुधवार को प्रातः ७ बजे, बिना कुछ खाये-पीये एक पात्र में शुद्ध गो-दूध तथा बिल्व-पत्र लेकर मंदिर गया। मेरे पास एक शीशी में गंगोत्री यमनोत्री, गोमुख, केदार तथा बदरीनाथ से लाया गया जल। था, उसे भी गो-दूध में मिला दिया।

मंदिर में जाकर देखा—फिर वही अपार जनसमूह मंदिर में प्रवेश करने के लिए पूर्वी-द्वार पर दायें-बायें दो लम्बी कतारों में दर्शनार्थी खड़े थे। कुछ सिपाही बेंत द्वारा भीड़ को नियंत्रित करने का प्रयत्न कर रहे थे। मैं दायीं ओर की कतार में खड़ा हो गया। इस धक्कम-धक्के में अपने को संभालना भी मुश्किल हो रहा था, हाथ में रखे पात्र की तो बात ही क्या! इतने में दर्शनार्थियों का एक बड़ा दल आया और एक नयी कतार बनाकर खड़ा हो गया। कुछ लोग देर से आने पर आगे जाने का प्रयत्न करने लगे। कतार में बहुत सम

ही जा रहा हूँ। अव्यवस्था अपनी चरम सीमा पर थी। इतने में सिपाहियों ने आकर सब व्यवस्थित कर दिया—फिर से एक ही कतार रह गयी!। व्यवस्था करने का उनका तरीका अनोखा था। वे लोगों पर अन्धाधुन्ध बेंत चलाते थे। बेंत की मार खा-खाकर लोग पीछे हटते जाते थे, इससे एक ही कतार रह जाती थी। कौन कतार में आगे खड़ा है, कौन पीछे देखने की उन्हें फुर्सत नहीं थी। इस प्रकार दो-तीन बार मैं कतार में खड़ा रहा और बेंत की मार खाकर पीछे छिटकता रहा। अब मैं हताश हो गया। इस प्रकार से एक घंटा बीत गया। इस प्रकार कई घंटों तक खड़े रहकर भी कोई लाभ नहीं होगा, केवल बेंत ही खाना होगा—यह सोंचकर मैं भीड़ से अलग होकर खड़ा हो गया। वापस चलूं या नहीं यह सब सोच ही रहा था कि अचानक देखा, बायीं ओर की कतार के सभी लोगों को सिपाहियों ने एक साथ प्रवेश करा दिया है और प्रवेश द्वार एकदम खाली है। मै पास ही खड़ा था। अतः शीघ्र प्रवेश द्वार पर पहुँच गया। वाह महादेव जी की कृपा! उधर वाली कतार से बाहर छिटकाकर मुझे यहाँ प्रथम स्थान दे दिया!। जैसे ही सिपाहियों ने प्रवेश द्वार खोला कि सभी 'बोल-बम' का नारा लगाते हुए धक्कम-धुक्का करते हुए भीतर की ओर बढ़ते गये। सभी मानो उन्मत्त थे। मैं भी उनके बीच किसी प्रकार अभिषेक पात्र को बचाता हुआ आगे बढ़ा। गर्भमन्दिर में पहुंचकर देखा, उतनी छोटी सी जगह में अपार जनसमूह था, खड़े रहने की भी जगह नहीं थी। दूर से देखा, शिवलिंग के पास चौखट पर कुछ सिपाही मोटी बेतों को लेकर खड़े थे और शिवलिंग के पास जो भी आता था उस पर अंधाधुंध बेंत मारते जा रहे थे ताकि कोई भी वहाँ अधिक देर न रुका रहे। किसी प्रकार लोग शिवलिंग पर जल चढ़ाकर बेंत खाते हुए पश्चिम-उत्तर की ओर के एकमात्र निकास मार्ग से बाहर हो रहे थे। इस द्वार तथा पूर्वी द्वार (जिसके द्वारा हमने प्रवेश किया था) के अलावा और कोई द्वार अथवा खिड़की कहीं नहीं थी। दूर पश्चिम-दक्षिण कोने में एक छोटा-सा सिवलिंग पंखा चल रहा था; इसके अलावा हवा के आगमन का कोई मार्ग नहीं था। भीतर जाते ही मेरा दम छूटने लगा। मैं प्रवेश द्वार से कुछ दूर ही खड़ा था। आगे तथा पीछे जाने का कोई उपाय नहीं था। जब लगा कि अब अगली साँस नहीं ले पाऊंगा तब मन ही मन श्रीरामकृष्णदेव, स्वामीजी तथा शिवजी का नाम लिया। उतनी देर में चमत्कार हुआ। भीड़ अप्रत्याशितरूप से आगे बढ़ी और मैं ठीक शिवलिंग के पास फेंका गया। यहाँ विकास-द्वार पास होने से साँस चलने लगी। मैंने बाबा की इस कृपा से अभिभूत हो पात्र में बचे गो-भी अच्छा हुआ क्योंकि प्रातःकाल होने के कारण प्रथम दिन के समान बिल्वपत्रों से शिवलिंग पूर्णतः आच्छादित नहीं हुआ था। शिवजी की कृपा से ही यह दर्शन संभव हुआ तथा प्राण रक्षा हुई। उनकी अहैतुकी कृपा का अनुभव करता हुआ मैं मंदिर से वापस लौट गया।

उसी दिन श्री हरिश्चन्द्र पण्डा जी से बातचीत हुई। उनके पूर्वजों के समय से संरक्षित स्वामी विवेकानन्द तथा उनके अन्य गुरुभाइयों के लिखे पत्र भी उन्होंने दिखाये जो उन्होंने यहाँ दर्शन के लिए आने पर पण्डा जी के पितामह को लिखे थे। पण्डा जी ने बातचीत के प्रसंग में कहा कि उन्होंने अपने पितामह से सुना था—जब स्वामीजी यहाँ पधारे थे, तब घंटों वे मंदिर में शिवलिंग के पास ध्यान करते हुए तथा अश्रुपात करते हुए दिखायी पड़ते थे। यहाँ पर स्वामीजी स्वास्थ्य-सुधार के लिए १६ सितम्बर १८९८ को आये थे किन्तु स्वास्थ्य इतना खराब हुआ कि २२ जनवरी १९९९ को उन्हें वापस कलकत्ता लौटना पड़ा। उन्हें दमा का जो रोग था, वह वहाँ अत्यधिक बढ़ गया। एक बार तो प्राण-संकट भी उपस्थित हो गया था। बाद में स्वामीजी ने एक शिष्य से वार्तालाप के प्रसंग में कहा था—"देवघर में एक बार मेरा दमे का रोग इतना बढ़ गया था कि प्राण निकलने की प्रतीक्षा कर रहा था। उस समय भी देखा कि भीतर से सोऽहम् ध्वनि निकल रही है।"

शिवावतार स्वामी जी की भी शिवजी ने इस प्रकार प्राण-रक्षा की।

हे भोले बाबा, आपकी महती कृपा से ही आपका दर्शन हुआ, स्पर्शन हुआ। आपने ही प्राणों की रक्षा भी की। पता नहीं, पुनः कब दर्शन होंगे! आपके दर्शन को तीव्र आकांक्षा को लेकर यह धाम छोड़ रहा हूँ। किन्तु श्रावण मास में अब नहीं जाऊंगा जब तक कि मंदिर के संचालकगण और देवघर के प्रशासकगण मंदिर के भीतर संवातन तथा दर्शन की उचित व्यवस्था नहीं कर लेते। तब तक के लिए कवि विद्यापति के "जगत विदित वैद्यनाथ सकल गुण आगर हे", तुमसे विदा! तुम्हें शत कोटि प्रणाम! हर-हर बम-बम!!

स्वामी विवेकानन्द के संस्मरण

स्वामी सदाशिवानन्द

मेरे जुड़े अर्द्धचेतन हाथों से फूल गिरकर स्वामीजी के चरणकमलों पर बिखर गये और वे दूसरी ओर घूमकर वहाँ उपस्थित अन्य लोगों से बातें करने लगे; किन्तु पुनः उन्होंने अत्यंत कोमलभावयुक्त अपनी प्रेम पूर्ण दृष्टि मेरी सम्मोहित आँखों पर टिका दी और मुस्कुरा पड़े। यह सब शायद पलक झपकते ही हो गया, परन्तु उस अल्पक्षण में ही वे ढेर सारे उपदेश बोल गये "अपने माता-पिता का परित्याग करो, मान-यश का परित्याग करो और सब छोड़कर मेरे पास आ जाओ"। और मेरी अंतरात्मा ने प्रत्युत्तर दिया, "प्रभु ! मैं आपकी बातों को ग्रहण करता हूँ।" यह विगत काल की कविता या कल्पना नहीं है, बल्कि सहज सत्य है, जिसे मैंने स्वयं अनुभव किया।

स्वामीजी के साथ जापान के ओकाकुरा आए थे जिन्हें हम प्यार से चाचा अक्रूर कहते थे, जो स्वामी को—हमारे कृष्ण को मथुरा अर्थात् जापान ले जाना चाहते थे। स्वामीजी के साथ स्वामी निर्भयानन्द (कनाई), स्वामी बोधानन्द (हरिपद), दो लड़के गौड़ और नाडु भी आये थे। उन दिनों स्वामी शिवानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द वाराणसी में ही थे। सभी राजा कालीकृष्ण ठाकुर के 'सोंधवास' भवन को गये।

एक दिन संध्या समय में चारु बाबू और मैं वहाँ गये तो देखा कि सभी ऊपर वर्णित सज्जन कुर्सी पर बैठे हुए थे तथा स्वामीजी के भारत भ्रमण के संबंध में श्री ओकाकुरा से अंग्रेजी में कुछ बातें हो रही थीं। मैं प्रणाम करते विनीत भाव से फर्श पर बिछी दरी पर बैठ गया। स्वामीजी वार्तालाप के मध्य में ही रुककर मेरी तरफ प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखने लगे। यह दृष्टि उच्चरित वाणी से अधिक सार्थक थी। उन्होंने मुझे कुर्सी पर बैठने को कहा।

"यहाँ कुर्सी पर बैठ जाओ, मेरे बच्चे।"—कई बार उन्होंने यह बात कही जिस कारण उनकी आज्ञा माननी ही पड़ी और मैं कुर्सी पर बैठ गया।

सेवाश्रम (होम ऑफ सर्विस) से 'सोंधवास' भवन पाँच मील दूर था। हमलोग प्रतिदिन स्वामीजी के दर्शन के लिए वहाँ जाते थे और कभी-कभी रात्रि में वहीं ठहर जाते तथा भोजन भी वहीं करते थे। भोजन के समय स्वामजी प्रायः कोई स्वादिष्ट व्यंजन लेकर हमलोगों के बीच बाँट देते और मुस्कराकर पूछते, "क्या तुमलोगों को अच्छा लग रहा है ? चखकर देखो। मुझे इसका स्वाद अच्छा लगा, इसलिए तुमलोगों को दिया।" बहुत इच्छा रहते हुए भी हमलोगों के लिए वहाँ प्रतिदिन उपस्थित होना संभव नहीं होता था। एक किन मेरी अनुपस्थिति में ही स्वामी शिवानन्द ने स्वामीजी से हमलोगों को दीक्षित कर देने के लिए अनुरोध किया। वे राजी हो गये, परंतु दीक्षा का दिन निर्धारित नहीं हुआ।

चारु बाबू तथा हरिदास चटर्जी ने मुझसे कहा कि इस संबंध में स्वामीजी से स्वयं सही जानकारी प्राप्त कर लो। मैं उनके पास गया और अपना अनुरोध व्यक्त किया। मुस्कुराते हुए स्वामीजी अत्यंत मधुर स्वर में बोले, 'क्यों, रामानुजीय वैष्णव के रूप में तो पहले ही तुम्हारी दीक्षा हो चुकी है। विष्णु की पूजा करना तो बड़ी अच्छी बात है। तुम्हें पुनः दीक्षा देने का तो मैं कोई कारण नहीं देखता।" मैंने विनीत भाव से कहा, लेकिन मैं आप जैसे योगी से दीक्षित होना चाहता हूँ।" इस पर वे मुस्करा पड़े तथा दीक्षादान के लिए राजी हो गये। (क्रमशः)

धारावाहिक

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

"अन्नपूर्णा पूजा के दिन हम सभी का सुरेश मित्र के घर निमंत्रण रहता था। वहाँ वे तीन वर्ष गये थे। सुरेश बाबू ठाकुर का बड़ा आदर-यत्न करते थे, परन्तु खिलाने में बड़ी देरी करते थे। इसीलिए एक बार पूजा के समय उन्होंने कहा था, 'देखो, अन्नपूर्णा जिसके घर आती हैं, उस दिन उसके घर अन्न का अभाव नहीं होता, सभी भरपेट खाने को पाते हैं। परन्तु कोई भूख लगने पर खाने को पाता है, तो कोई रात को पाता है। जिसे भूख लगने पर मिल जाता है, वह सोचता है कि माँ की कृपा हुई है और जिसे भूख लगने पर नहीं मिलता वह सोचता है माँ की कृपा नहीं हुई। जानते हो, माँ सबको ठीक-ठीक दे रही हैं—जिसे जैसी आवश्यकता है वह उसी भाव से माँ की कृपा को समझ लेता है।'

"जानते हो! दशहरा के दिन उन्होंने हम सबको गंगा पूजा करने को कहा। राखाल को बोले—'गंगामाई साक्षात् देवी हैं, आज उनकी पूजा करनी चाहिए। राखालभाई उन दिनों गंगामाई को देवी नहीं मानते थे। इसे सुनकर ठाकुर ने एक घटना बतायी (यह ठाकुर के साधनकाल में देखी हुई घटना है)। एक दिन वे पोस्ता (तटबन्ध) के किनारे टहल रहे थे। घूमते-घूमते उनके मन में संशय उठा कि गंगामाई देवी हैं अथवा नहीं। उसी समय उन्होंने गंगा के भीतर से आती शंख-ध्वनि सुनी, परन्तु देख कुछ भी नहीं सके। क्रमशः शंख की आवाज समीप आती गयी और उन्होंने देखा कि आगे-आगे एक बालक शंख बजाता जा रहा है और उसके पीछे-पीछे देवी चली जा रही हैं। यह सब देखकर उनके मन के सारे सन्देह दूर हो गये। ठाकुर की यह बात सुनकर राखाल भाई को बड़ा आश्चर्य हुआ, वे बोले—'हम लोग तो इतना सब नहीं जानते, हम तो गंगा को नदी के रूप में ही जानते हैं, बहता हुआ पानी है, माझी-मल्लाह लोग तो वहाँ पेशाब आदि भी किया करते हैं।' राखाल भाई की इस बात पर ठाकुर बड़े नाराज हुए और कहने लगे—'खबरदार! गंगा में कभी भी मल-मूत्र का त्याग न करना।' तभी से मैंने राखाल भाई को कभी गंगा तट पर शौच करते नहीं देखा।"

* * * *

"उसी वर्ष मैं ठाकुर के साथ पहली बार पानीहाटी के महोत्सव में गया। मैं, राखाल, भवनाथ हम सब रामबाबू की गाड़ी में गये थे। अन्यान्य भक्त लोग भी गये थे। वहाँ पर मैंने नवद्वीप गोस्वामी को देखा। ठाकुर उनके साथ कीर्तन करने लगे। उस बार ठाकुर की भावसमाधि देखकर हम लोगों को भी भय हुआ था। उसका श्वास-प्रश्वास बन्द हो गया था, मुख नेत्र सीना आदि सब लाल हो गये थे, हथेली तक लाल हो गयी थी। उसका ऐसा भाव देखकर सभी उनकी चरण धूलि लेने का प्रयास करने लगे, परन्तु हमारे लिए तो बड़ी मुश्किल हो गयी। सभी लोग ठाकुर का स्पर्श करना चाहते थे, हम मना कर रहे थे, पर कोई सुनता ही

था। इसी को लेकर बड़ी गड़बड़ी मच गयी। राम बाबू बोले, 'अरे लेटा! छोड़ दे, लोग उन्हें छूकर धन्य हो जायँ।' परन्तु मैं राम बाबू की बात नहीं मान सका। मैंने तो देखा था कि समाधि के समय उन्हें स्पर्श करने पर उन्हें कितना कष्ट होता था! राम बाबू बारम्बार हमें वही बात कह रहे थे। मैं, राखाल भाई और भवनाथ भाई हम तीनों मिलकर ठाकुर को वहाँ से निकालकर बाहर बैठके में ले आये। परन्तु लोग क्या मानने वाले थे? उन्हें जब हम ले जा रहे थे, तो भी लोग उनके चरणों पर हाथ लगाने का प्रयास कर रहे थे। अन्त में राम बाबू ने क्या किया जानते हो? एक मुट्ठी धूल ठाकुर के चरणों से छुलाकर सभी को बाँटने लगे। उसी समय हम लोग उन्हें बाहर ला सके थे।··· उसके बाद वाले साल भी मैं गया था, परन्तु इस बार हम नाव में गये थे। उस बार (श्रीमाँ) को ले जाने की बात हुई थी। माँ हमलोगों के साथ जाने को तैयार नहीं हुईं। इस पर ठाकुर ने उनकी बड़ी प्रशंसा की और कहा—'देखा न, कैसी बुद्धिमती है! बाद में कहीं कोई बात न उठे इसलिये स्वयं ही मना कर दिया।' उस बार ठाकुर ने सब के साथ ही प्रसाद ग्रहण किया और प्रसाद ग्रहण करने के बाद दोनों हाथ उठाकर नाचने लगे।

"पानीहाटी के महोत्सव में एक बार वैष्णव विदाई के समय ठाकुर को पाँच रुपये मिले। बाकी सबको रुपये दो रुपये मिले और उन्हें पाँच रुपये मिले। ठाकुर वे रुपये स्वीकार नहीं करना चाहते थे, परन्तु कार्यकर्ताओं ने उन्हें नहीं छोड़ा। आखिरकार वे रुपये राखाल के हाथ में दिये गये। राखाल भाई उन रुपये में एक टोकरी आम और एक टोकरी संदेश लेकर दक्षिणेश्वर आये। यह देखकर ठाकुर राखाल भाई पर बड़े नाराज हुए और उन्हें सावधान करते हुए कहा—'देख! ऐसा काम फिर कभी नहीं करना। तेरे लेने से मेरा ही लेना हुआ। पंछी और दरवेश को कुछ संचय नहीं करना चाहिए।"

—क्रमश:

पृष्ठ १७ का शेषांश

करते हैं। हमलोगों के विभिन्न इंस्टिट्युशनों (शिक्षण संस्थानों) में जो अध्ययन करते हैं, उन्हें हमलोग निरन्तर यही शिक्षा देने की चेष्टा करते हैं कि तुमलोग ठाकुर-माँ-स्वामीजी के भावों का अवलम्बन कर अभी से ही जीवन का गठन कर लो। और कुछ नहीं होओ, कम से कम मानवीय गुणों से सम्पन्न भद्र, सभ्य भारतीय नागरिक होओ। सब को साधु नहीं होना होगा। मठ-मिशन में योगदान नहीं करना होगा। केवल एक सत् जीवन यापनकर इस महान गणतान्त्रिक देश में एक यथार्थ 'मनुष्य' के रूप में प्रतिष्ठित होओ। यही काफी होगा। हमलोगों के द्वारा इसी मनुष्य निर्माण करने की चेष्टा अनेक बाधा-विपत्तियों के बावजूद निर्बाध रूप से हो रही है।

दो एक और भी विचार-विनिमय के बाद स्वामी रंगनाथानन्दजी के साथ यह लम्बी बातचीत समाप्त होता है। इन आशावादी, सर्वत्यागी संन्यासी को श्रद्धापूर्ण प्रणाम अर्पित कर लौटने के मार्ग में अनिवार्य रूप से याद हो आयी है कवि जीवनानन्द की ये अपराजेय पंक्तियाँ—

"सुचेतना, एइ पथे आलो ज्वले—
एइ पथेइ पृथिवीर क्रममुक्ति होवे··· ।

(इसी सुचेतनता के पथ पर फैला है आलोक
इस पथ पर ही होगी पृथ्वी क्रमश: मुक्त अशोक··· ।')

संसार के श्रेष्ठ कवियों, दार्शनिकों, साधुओं, मनीषियों एवं महामानवों ने सर्वदा सभी देशों में इसी ज्योतिर्मय भविष्य का स्वप्न देखा है। स्वामी रंगनाथानन्दजी भी इन्हीं में से एक हैं।

I love you all because you are the children of gods, and because you are the children of the glorious forefathers. How then can I curse you ? Never. All blessings be upon you. (iii-227)

SWAMI VIVEKANANDA

With Best Compliments From :

THE SIRPUR PAPER MILLS LIMITED

(Regd. Office : 5-9—201/2 & 2A, Chirag Ali Lane, Hyderabad—500 001 A.P.)

Manufacturers of quality printing-writing, packing-wrapping papers and paper boards.

Also manufacture superior quality rag content papers and air mail papers.

MILLS : SIRPUR—KAGHAZ NAGAR—505 296

We Want that education by which character is formed, strength of mind is increased, the intellect is expanded and by which one can stand on one's own feet.....We need technical education and all else that will develop industries, so that men instead of seeking for service may earn enough to provide for themselves and eave against a rainy day.

SWAMI VIVEKANANDA

With Best Compliments From :

ORIENT PAPER & INDUSTRIES LIMITED

(**Regd. Office : Brajraj nagar, Orissa**)

Manufacturers of Superior quality

Printing-writing, packing-wrapping papers and paper boards.

MILLS : BRAJRAJ NAGAR—768 216

AMLAI – 484 117

He who loves lives, he who is selfish is dying, Therefore love for love's sake, because it is the only law of lifie, just as you breathe to live. (VI-320)

Swami Vivekananda

With Best Compliments From :

Phone : 25-0433
25-6800

Calcutta Metal Corporation

Dealers In Non-Ferrous Metal In All Forms And The Producers Of Non-Ferrous Castings According To The Specifications.

Works :
Brojonath Lahiri Lane, Santragachi,
HOWRAH—711 104

Office :
85, Netaji Subhas Road (1st Floor)
CALCUTTA—700 001

With Best Compliments From :

M/s D. P. Chemicals & Allied Products

210 LAXMI NAGAR
NAGPUR—440 022
Tel. No : 31295

Manufacturer of
Ammonium Nitate Explo ive/Blast ng Grade.

पढ़िए ! पढ़िए !!

श्रीरामकृष्ण—विवेकानन्द-भावधारा से अनुप्राणित
हिन्दी त्रैमासिक

विवेक-ज्योति

सम्पादक -- स्वामी आत्मानन्द

वार्षिक १० रुपये मात्र एक प्रति ३ रुपये

आजीवन ग्राहकता शुल्क (२५ वर्षों के लिए)—१०० रुपये

सम्पर्क सूत्र :
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर —४९२००१ (म० प्र०)

Work up to death—I am with you, and when I am gone, my spirit will work with you. This life comes and goes.....It is better, far better to die on the field of duty preaching the truth than to die like a worldly worm. Advance !"

Swami Vivekananda

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :

K. B. G. INDUSTRIES

Manufacturer of Relays, Contactors,
Panel Board, Control System, Magnetic,
Brake D. C. Motor etc.

11/A, A. C. Sarkar Road,
CALCUTTA — 700 076

PHONE : 58-3087

बैद्यनाथ च्यवनप्राश

अब पोलीजार में उपलब्ध

शक्ति

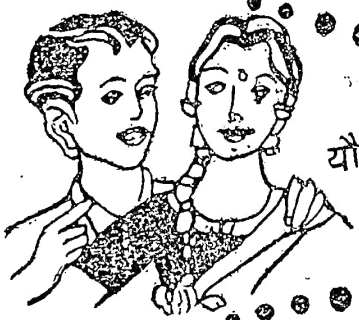

यौवन

विकास

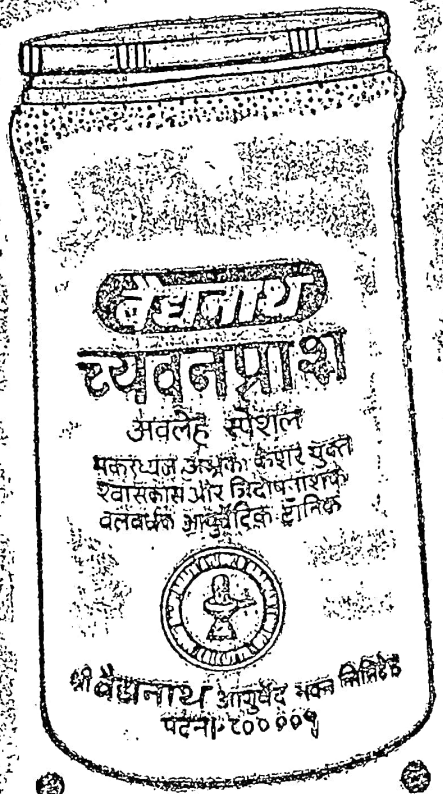

कफ खांसी नाशक

दिमागी ताजगी

बलवर्द्धक

आदर्श आयुर्वेदिक पारिवारिक टानिक

कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?

प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर।

बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता है

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१

Faith, faith, faith in ourselves, faith, faith in God—this is the secret of greatness.

—**Swami Vivekananda**

With Best Compliments From :

EARTHMOVING EQUIPMENT DIVISION
HINDUSTAN MOTORS LIMITED

MANUFACTURERS OF

HINDUSTAN

EARTHMOVING EQUIPMENT

REAR DUMPERS , FRONT-END LOADERS

AND

CRAWLER TRACTORS

AT THEIR TIRUVALLUR PLANT IN TAMIL NADU

P. O. MELNALLATHUR
TIRUVALLUR
TAMILNADU 602 004
INDIA

Cable : HINDMOTOR , MADRAS
Telex : 41-7349 HMED IN
Phone :
Madras – 472026
Works – 202 to 206, 217

स्वामी विवेकानन्दकृत योग पर विख्यात पुस्तकें

ज्ञानयोग :— रु० ११.००

वेदान्त के गूढ़ तत्त्वों का सरल, स्पष्ट तथा सुन्दर रूप से विवेचन।

राजयोग (पातंजल **योगसूत्र**, सूत्रार्थ और व्याख्यासहित) :— रु० ९.००

प्राणायाम-ध्यान-धारणा द्वारा समाधि-अवस्था की प्राप्ति के विषय में उपयोगी सूचनाएँ और मार्गप्रदर्शन।

कर्मयोग :— रु० ६.००

'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' इस आदर्श के अनुसार कर्म किस प्रकार किये जाएँ, जिससे वे परम शान्ति का निदान बनें—इस रहस्य का विवरण।

भक्तियोग :— रु० ४.००

भक्ति का सच्चा अर्थ, सच्चे भक्त का जीवन तथा भक्तिमार्ग पर अधिकाधिक अग्रसर होने के लिए आवश्यक गुण तथा साधनाएँ—इस विषय का अत्यन्त रोचक एवं मौलिक दर्शन।

प्रेमयोग :— रु० ५.००

प्रत्येक मानव के हृदय में निहित महान् शक्ति प्रेम का जीवन के सर्वोच्च ध्येय भगवत्प्राप्ति के लिए उपयोग किस प्रकार करें, इसका अत्यन्त भावपूर्ण विवेचन।

❀ ❀ ❀

स्वामी विवेकानन्द के दस भागों में उपलब्ध सम्पूर्ण साहित्य में से विशेष महत्वपूर्ण व्याख्यानों, प्रवचनों, लेखों, पत्रों, सम्भाषणों एवं कविताओं का प्रातिनिधिक संकलन

विवेकानन्द साहित्य संचयन

मूल्य : १०.००

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :—

रामकृष्ण मठ

धन्तोली, नागपुर—४४० ०१२

विवेक वाणी

दयालु देव रामकृष्ण

देखते हो, देश में और विदेश में सबको उन्होंने (श्रीरामकृष्ण ने) पहले से ही निगलकर पेट में डाल लिया है दादा— "मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ।" (मेरे द्वारा ये सब पहले से ही हत हो चुके हैं, हे अर्जुन, तुम्हें केवल निमित्तमात्र होना है।) आज हो या कल वे सब तुम लोगों के अंग में मिल जायेंगे। हाय रे अल्प विश्वास ! उनकी कृपा से "ब्रह्माण्डं गोष्पदायते" (ब्रह्माण्ड गोष्पद हो जाता है)। नमकहराम न होना, इस पाप का प्रायश्चित्त नहीं है। नाम-यश, सुकर्म यज्जुहोषि, यत्तपस्यसि, यदश्नासि इत्यादि सब उनके चरणों में समर्पण कर दो। हमें और क्या चाहिए ? उन्होंने ग्रहण कर लिया तो और क्या चाहिए ? भक्ति स्वयं फलस्वरूपा है - और क्या चाहिए ? हे भाई, जिन्होंने खिला-पिलाकर, विद्या-बुद्धि देकर मनुष्य बनाया, जिन्होंने हमारी आत्मा की आँखें खोल दीं; जिन्हें रातदिन सजीव ईश्वर देखा, जिनकी पवित्रता, प्रेम और ऐश्वर्य का राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, चैतन्य आदि में कणमात्र प्रकाश है, उनके निकट नमकहरामी ! ··· बुद्ध, कृष्ण आदि का तीन चौथाई हिस्सा कपोल-कल्पना के सिवा और क्या है ? ·····अरे तुम ऐसे दयालु देव की दया भूलते हो ? बुद्ध, कृष्ण, ईसा पैदा हुए थे या नहीं, इसका कोई प्रमाण नहीं है। और साक्षात् भगवान को देखकर भी तुम्हें कभी-कभी मतिभ्रम होता है ! तुम लोगों के जीवन को धिक्कार है ! मैं और क्या कहूँ ? देश-विदेश में नास्तिक पाखण्डी भी उनकी मूर्ति की पूजा करते हैं, और तुम लोगों को समय समय पर मतिभ्रम होता है। तुम्हारे जैसे लाखों वे अपने निःश्वास से गढ़ लेंगे। तुम लोगों का जन्म धन्य है, कुल धन्य है, देश धन्य है कि उनके पैरों की धूलि मिली। मैं क्या करूँ, मुझे लाचार होकर ऐसा कट्टर होना पड़ रहा है। मुझे तो उनके जनों को छोड़ और कहीं पवित्रता और निःस्वार्थता देखने को नहीं मिलती। सभी जगह मुँह में राम बगल में छुरी है— सिर्फ उनके जनों को छोड़कर। वे रक्षा कर रहे हैं, यह मैं देख जो रहा हूँ। अरे पागल, परी जैसी औरतें, लाखों रुपये, ये सब मेरे लिए तुच्छ हो रहे हैं, यह क्या मेरे बल पर ?— या वे रक्षा कर रहे हैं इसलिए ! उनके सिवा दूसरे किसी को एक भी रुपया या स्त्री के बारे में मैं विश्वास जो नहीं कर सकता। उन पर जिसका विश्वास नहीं है और परमाराध्या माताजी पर जिसकी भक्ति नहीं है उसका कहीं कुछ भी न होगा — यह सीधी भाषा में कह दिया, याद रखना।

—स्वामी विवेकानन्द

(पत्रावली, पृष्ठ संख्या ३५६-५८)